卐 श्री सीताराम 卐

।। ॐ श्रीमद्रामचन्द्र चरणौ शरणं प्रपद्ये ।
श्रीमते रामचन्द्राय नमः ।।
।। श्रीरामः शरणं मम ।।

श्रीहर्षण साहित्य में श्रीसीतामंत्रार्थ

मंत्रार्थ–निरूपक

श्रीराममंत्रार्थ मण्डपम्-आविर्भावक,
मैथिल सख्य रस प्रतिष्ठापक, श्रीप्रेमरामायणकार,
प्रेमावतार अनन्त श्रीविभूषित स्वामी श्रीमद् रामहर्षणदास जी
महाराज के कृपापात्र

श्रीकृष्ण दास

(डॉ० श्रीकृष्ण उपाध्याय) अवकाश प्राप्त,
उपाचार्य(रीडर), हिन्दी विभाग,
साकेत स्नातकोत्तर महाविद्यालय, श्रीअयोध्या, फैजाबाद।

卐 श्री सीताराम 卐

।। ॐ श्रीमद्रामचन्द्र चरणौ शरणं प्रपद्ये ।
श्रीमते रामचन्द्राय नमः ।।
।। श्रीरामः शरणं मम ।।

श्रीहर्षण साहित्य में श्रीसीतामंत्रार्थ

मंत्रार्थ-निरूपक

श्रीराममंत्रार्थ मण्डपम्-आविर्भावक,
मैथिल सख्य रस प्रतिष्ठापक, श्रीप्रेमरामायणकार,
प्रेमावतार अनन्त श्रीविभूषित स्वामी श्रीमद् रामहर्षणदास जी
महाराज के कृपापात्र

श्रीकृष्ण दास
(डॉ० श्रीकृष्ण उपाध्याय) अवकाश प्राप्त,
उपाचार्य(रीडर), हिन्दी विभाग,
साकेत स्नातकोत्तर महाविद्यालय, श्रीअयोध्या, फैजाबाद।

श्रीहर्षण साहित्य में श्रीसीतामंत्रार्थ

मंत्रार्थ-निरूपक

श्रीराममंत्रार्थ मण्डपम्-आविर्भावक,
मैथिल सख्य रस प्रतिष्ठापक, श्रीप्रेमरामायणकार,
प्रेमावतार अनन्त श्रीविभूषित स्वामी श्रीमद् रामहर्षणदास जी
महाराज के कृपापात्र
श्रीकृष्ण दास
(डॉ० श्रीकृष्ण उपाध्याय) अवकाश प्राप्त,
उपाचार्य(रीडर), हिन्दी विभाग,
साकेत स्नातकोत्तर महाविद्यालय, श्रीअयोध्या, फैजाबाद।

प्रकाशक

डॉ. नवीन कुमार उपाध्याय
एम.एस.सी., एम.ए.(त्रय), पी.एच.डी.

सर्वाधिकार

१००८श्रीहरिदासजी महाराज
महान्त, श्री राम हर्षण कुँज, अयोध्या।

प्रतियाँ

एक सौ प्रतियाँ
मूल्य - श्री आचार्य चरणानुज

प्रकाशन तिथि

श्री हनुमान जयन्ती, २०१२

पुस्तक प्राप्ति का स्थान

हर्षण हृदय संस्थान, फैजाबाद।

अक्षर संयोजक

श्री परमानन्द मिश्र

मुद्रकः

प्रकाशक की ओर से

दो शब्द

प्रकाशक, लेखक का न केवल ज्येष्ठ पुत्र बल्कि गुरुभ्राता भी है। अनन्त श्री विभूषित 1008 प्रेमावतार श्रीमद्स्वामी रामहर्षण जी महाराज, पीले वस्त्र ओढ़ाकर जब श्रीराममंत्र कर्णपुटों में सुना रहे थे उसी समय उन्होंने यह भी कहा कि ''उपाध्याय जी से जो पूंछना होगा पूंछ लीजिएगा''। इस श्रीमुख वाणी का रहस्यार्थ उस समय यह अज्ञानी दास समझ नहीं सका। इसका ज्ञान तब हुआ जब प्रस्तुत ग्रंथ ''श्री हर्षण साहित्य में श्रीसीतामंत्रार्थ'' के लेखन के पश्चात् पिताश्री ने न केवल पढ़ाया, समझाया बल्कि कंठस्थ करा दिया।

प्रस्तुत ग्रंथ 'श्री प्रेम रामायण के दो मंगलश्लोकों में' गुप्त रूप से सीतामंत्र के बीजाक्षर का मंत्रशास्त्र की शास्त्रीय एवं विश्लेष्णात्मक पद्धति से व्याख्या है। 1965 ई0 में पिताश्री को श्रीरामचरित मानस में शैव और शाक्त भाव विषय पर पी0 एच0 डी0 की उपाधि प्राप्त हुई थी। इस ग्रंथ के पढ़ाने पर ही यह ज्ञान हो जाता है कि लेखक को आगम शास्त्र जिसे मंत्रशास्त्र कहते हैं उसका कितना सूक्ष्म ज्ञान है। उसी समय से इनके लेखन में शास्त्रीयता, विश्लेष्णात्मकता का जो प्रवेश हो गया उसी का दर्शन आपश्री के बाद के ग्रंथों में भी देखा जाता है, चाहे वह ''श्री प्रेमरामायण प्रमाण भाष्य हो'' अथवा ''बीसवीं शताब्दी के जीवित तुलसी श्रीमद् स्वामी रामहर्षण दास' हो'', अथवा ''जय जय श्री हनुमान गोसाईं'' हो। इनके उपर्युक्त सभी ग्रंथ रामभक्तिकाव्य के रसिक विद्वत संतों के लिए अधिक उपादेय है।

प्रस्तुत ग्रंथ ''श्रीहर्षण साहित्य में श्रीसीतामंत्रार्थ'' में जो ''श्री'' पद की व्याख्या है वह सार्वभौम पद है। अनन्त श्री विभूषित 1008 रामानुजाचार्य का 'श्रीसंप्रदाय' हो अथवा कृष्ण भक्ति, राम भक्ति हो अथवा 'श्रीकुल' का शाक्त संप्रदाय सबमें 'श्री पद आत्मा की भौति प्रतिष्ठित है। और तो और, इस्लाम मत कें सूफी संप्रदाय में श्रीजू 'खुदा के नूर' के रूप में अनुप्राणित हैं तो ईसाई मत में करुणा और सेवा के रूप में। अंग्रेजों के युद्ध विभाग में 'रेड क्रास सोसाइटी' है, जो परःदुख तरता का व्यंजक है। युद्ध क्षेत्र में दोनों पक्षों के मृतक एवं घायल सैनिकों को रेड क्रास सोसाइटी, एम्बुलेंसों में ले जाकर अस्पतालों में पहुँचाती है। ऐसे 'श्रीपद' की व्याख्या 'श्री प्रेमरामायण' आदि आचार्य प्रभु के ग्रंथों के आधार पर श्रीसीतामंत्र के रूप में सूक्ष्म व्याख्या की गयी है, जो मंत्रनिष्ठ विद्वत, संत एवं भक्त समाज के लिए उपादेय है।

2008 ई0 में जब प्रस्तुत ग्रंथ का प्रणयन हुआ तब इसकी पाण्डुलिपि मुझे सौंपते हुए पिताश्री ने यह कहा था कि 'मेरे शरीर छूटने पर प्रकाशित करना और मंत्रनिष्ठ विद्वत संतों के कर कमलों में समर्पित करना'। 2012 ई0 के अगस्त में

भयंकर रूप से 'गैस्ट्रिक और ब्राकाइटिस' का आक्रमण हुआ। फलस्वरूप 'हर्षण ह्रदय संस्थान' में भर्ती हुए। इस संस्थान के प्रतिष्ठापक डॉ0 अरुण कुमार जायसवाल, हमारे गुरुभ्राता और अंतरंग मित्र भी हैं। वहाँ पिताश्री को एक महीना रुकना पड़ा।

इस अवधि में डॉ0 जायसवाल दम्पति ने जब प्रस्तुत ग्रंथ को पिताश्री के मुख से सुनकर मँत्रमुग्ध हो गए तब इस ग्रंथ के प्रकाशन का आग्रह किया। डॉ0 जायसवाल साहब ने न केवल इस दिव्य ग्रंथ के प्रकाशन की प्रबल प्रेरणा दी अपितु गुप्त रूप से कम्प्यूटर प्रिंट हेतु अपने ही हास्पिटल के एक कमरे में अपने कम्प्यूटर पर प्रिंट भी करवाया। संक्षेप में इसके प्रकाशन का मूल श्रेय डॉक्टर साहब को है। उन्होंने आर्थिक रूप से भी सहयोग करने की चेष्टा की परन्तु पिताश्री ने आर्थिक सहयोग स्वीकार नहीं किया।

अतः हमलोग उनके कृतज्ञ हैं। साकेत महाविद्यालय, अयोध्या के हिन्दी विभागाध्यक्ष डॉ जनार्दन उपाध्याय जी के हम ऋणी हैं, जिन्होंने इसके मुद्रण की व्यवस्था की है। श्री परमानन्द मिश्र ने शुद्ध अक्षर संयोजन किया है, उसके लिए धन्यवाद के पात्र हैं।

श्री प्रदीप कुमार जायसवाल की भागदौड़ के लिए हम उन्हें साधुवाद देते हैं।

श्रीसीताराम

श्रीसीताराम चरण समर्पितम्

श्री हनुमानजयन्ती, 2012 ई0

डॉ. नवीन कुमार उपाध्याय
लाल कोठी
ऋणमोचन घाट, श्रीअयोध्याजी

।। श्री सीताराम ।।

भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र के अन्तरंग अवधूत सखा श्रीउद्धवजी के स्वरूप
अनन्त श्रीविभूषित 1008 ब्रह्मपद प्रतिष्ठित,
"श्रीमद्भागवत विद्यापीठ, श्रीअयोध्या के आचार्य
श्रीमद्स्वामी रामबालक दास जी महाराज का
"सुआशीर्वाद"

श्रीमद् राघवेन्द्र प्रभु श्रीरामजी की असीम अनुकम्पा से इस दिव्य ग्रंथ की भूमिका लिखते हुए मुझे अपार हर्ष का अनुभव हो रहा है क्योंकि इसमें परमाराध्या मिथिलेश–नन्दिनी भगवती श्रीजानकीजी के मंत्रार्थ की पूर्ण व्याख्या की गयी है, जो एक उपासक के लिए जानना परमावश्यक है विशेषकर उनके लिए जिनकी श्रीजानकीजी की उपासना ही प्रधान है। इसमें श्रीसीताजी के षडक्षर बीज मंत्रार्थ के प्रत्येक अक्षर की समीचीन व्याख्या करते हुए अन्य अनेक दिव्य ग्रंथों के अकाट्य प्रमाणों द्वारा, जो मंत्रार्थ की प्रामाणिकता के साथ–साथ उनकी यथार्थता प्रकट की गयी है, वह अद्भुत है। श्रीसीतामंत्रार्थ की व्याख्या के माध्यम से मिथिलेश–नन्दिनी भगवती श्री जानकीजी के यथार्थ स्वरूप, शक्ति एवं उपासना पद्धति आदि का परिज्ञान कराया गया है।

यद्यपि श्रीरामहर्षण कुंज के पीठाधीश्वर प्रेममूर्ति श्रीमान् महाराजश्री ने "श्रीसीतामंत्रार्थ" की व्याख्या अपने श्रीप्रेमरामायण नामक ग्रंथ में की है, पर उससे सबको भरपूर लाभ नहीं मिल सकता था। यह तो ऐसा ही है जैसा श्रीमानस में कहा गया है– " अस प्रभु हृदय अछत अविकारी। सकल जीव जग दीन दुखारी।" श्री महाराज ने मंत्रार्थ का प्रकाशन इसलिए नहीं किया क्योंकि मंत्रतत्व के वे विशेषज्ञ थे। उन्हें यह मालूम था कि गोपनीय तत्वों का प्रकाशन सबके लिए नहीं किया जा सकता।

पर देश, काल, परिस्थिति के अनुरूप "आवश्यकता ही आविष्कार की जननी" होती है। यह उक्ति सार्थक करते हुए श्रीउपाध्याय जी ने सप्रमाण श्रीसीतामंत्रार्थ का व्याख्यान एवम् प्रकाशन करके यह परम रहस्यात्मक मंत्र को सभी भक्तों के लिए सुलभ कर दिया। क्योंकि महाराजश्री जब प्रत्यक्ष रूप में विद्यमान थे, तब कोई शंका या संदेह होने पर उनसे भक्तों को समाधान मिल जाता था। परन्तु उनकी अनुपस्थिति में आगे भविष्य में भक्तों को जो कठिनाई, जो समस्या, जो आशंका हो सकती थी, उन सबको दूर कर दिया गया है। यह कार्य भी महाराज श्री की अन्तः प्रेरणा से श्रीउपाध्यायजी के द्वारा संपन्न हुआ है, ऐसा मैं मानता हूँ। अपने जीवन के अंतिम समय में यह कार्य संपन्न करके श्रीउपाध्यायजी ने जो सराहनीय प्रयास किया, इसके लिए हम उन्हें बहुत–बहुत धन्यवाद देते हैं और उनके द्वारा लिखित इस ग्रंथ का अवलोकन करके हम अपने को अनुग्रहित मानते हैं। इसके साथ ही मुझे यह आशा है कि इस कृति से महाराजश्री के लाखों भक्तजन लाभान्वित होंगे।

विजयादशमी,
संवत् 2069,
24 अक्टूबर, 2012 ई0

(राम बालक दास)
आचार्य
श्रीमद् भागवत विद्यापीठ,
नयां घाट, श्री अयोध्याजी।

समर्पण

अनंत श्री विभूषित १००८ सद्‌गुरुदेव भगवान् हमारे
श्रीराममंत्रदाता के आत्म स्वरूप मंत्रदेवता श्रीसिद्धि सदन
विहारिणी-विहारीजू के श्रीचरण-कमलों में समर्पित

श्री सिद्धीजी के ननद-ननदोई श्री सिद्धीसदन विहारिणी - विहारी जू

प्रेम स्वरूपा जानकी, प्रेमिन सुख दातार।
मम त्रिकरण प्रभु-प्रेम महँ, रमै कृपा सुखसार।।
प्रेम रूप रघुनाथ प्रभु, प्रेमिन जीवन प्राण।
सीय सहित तव प्रेम महँ, निशिदिन रहहु भुलान।।

श्रीकृष्ण दास
(युगल प्रिया शरण)

।। श्रीसीताराम ।।

वन्दे वाणी विनायकौ

आमुख

(अ)

श्रीसाकेत नित्य लीलालीन अनंत श्रीविभूषित प्रेमावतार श्रीमद् स्वामी रामहर्षण दास जी महाराज (1917 ई0 से 2012 ई0 तक) एक शब्दब्रह्म-निष्णात अवतारी महापुरुष थे। राम नाम हो अथवा श्रीराममंत्रराज, उसी को साक्षात् परब्रह्म पुरुषोत्तम मानते थे। उनकी ऐसी अनन्यता थी कि वे श्रीराम मंत्रराज को ही अपना शेषी, भोक्ता और संरक्षक मानते हुए अपने स्वरूप को उनका शेष, भोग्य और रक्ष्य मानते थे। श्रीप्रेमरामायणकार हमारे आचार्य प्रभु अकार-त्रय के प्रतिपादक, प्रचारक वैष्णवाचार्य ही नहीं अपितु कथनी-करनी में अकार-त्रय-संपन्नता के प्रमाण थे।

श्रीप्रेमरामायण के प्रथम मिथिला काण्ड के प्रथम मंगल श्लोक से पंचम मंगल श्लाकों में आद्यक्षर-पद्धति से षडक्षर श्रीराममंत्रराज की वंदना ही नहीं की अपितु संपूर्ण श्रीप्रेमरामायण के शिलान्यास में स्वर्ण प्रतिमा की भाँति प्रतिष्ठित कर दिया। प्रस्तुत महाकाव्य को उन्होंने श्रीराममंत्रराज का ही शेष, भोग्य और रक्ष्य माना। इस रहस्य की जानकारी आचार्य प्रभु के कतिपय कृपापात्र संतों-भक्तों को है। राममंत्रराज की सेवा गुप्त सेवा है। इसके ज्ञाता, कर्त्ता और भोक्ता स्वयं उनका स्वरूप है। इसीलिए अगले मंगल श्लोक में ''गुप्त सेवा रतौ वन्दे श्रीलक्ष्मीनिधि लक्ष्मणौ'' रूप में मंगलाचरण है।

'गुप्त सेवा' पद देहली-दीपक न्याय से पूर्व पाँच श्लोकों और बाद के सप्तम-अष्टम श्लोकों पर संघटित होता है। सप्तम और अष्टम श्लोकों में श्रीराम वल्लभा सीता शक्ति की वंदना है-

आदिशक्तिं महामायां, वन्देऽहं रामवल्लभाम्।।
अभय-श्रेयसां दात्रीं, जीव रक्षण तत्पराम्।। 7।।
नित्यां महा भावरूपां, ब्रह्माण्डानन्त कारिणीम्।
विदेह तनयां सीतां, लक्ष्मीनिधि अनुजां प्रियाम्।। 8।।

श्रीराममंत्रार्थ से भी अत्यंत गोपनीय श्रीसीतामंत्रार्थ है। जिस प्रकार श्रीरामचरितमानस के-

''उद्भव स्थिति संहार कारिणीम्; क्लेश हारिणीम् ।
सर्वश्रेयस्करीं सीतां नतोऽहं रामवल्लभाम्।।

में गुप्त रीति से सीतामंत्रार्थ का निरूपण किया गया है, उसी प्रकार श्रीप्रेमरामायण जी के उपर्युक्त युगल श्लोकों में श्रीसीतामंत्र के बीजाक्षर का अर्थ-निरूपण किया गया है। जिस

प्रकार विशाल वट वृक्ष एक बीज में स्थित रहता है, उसी प्रकार श्रीसीतामंत्र अपने बीज में स्थित है। जिस प्रकार बीज का विस्तार ही वृक्ष होता है, उसी प्रकार श्रीसीतामंत्र के उपर्युक्त बीज का ही विस्तार उपर्युक्त युगल श्लोक हैं।

महर्षि वाल्मीकि से लेकर श्रीहर्षण युग पूर्व तक मैथिल सख्य रस और उसके साहित्य सिद्धान्त का पता नहीं है, जैसा कि श्रीप्रेमरामायण के ''नम्र निवेदन'' में ग्रंथाकार ने स्वयं विवरण दिया है। इसी प्रकार मैथिल सख्य रस के आचार्य एवं भोक्ता नायक श्रीलक्ष्मीनिधिजी का भी कोई अता-पता नहीं। मैथिल सख्य रस के सिद्धान्त का प्रतिपादन आचार्य प्रभु ने यदि 'रस चन्द्रिका' में किया तो उसका विनियोग श्रीप्रेमरामायण में। श्रीप्रेमरामायण न केवल मैथिल सख्य रस का प्रतिष्ठापक ग्रंथ है बल्कि ग्रंथकार की स्वयं आत्मकथा भी।

मैथिल सख्य रस के अनुसार आदिशक्ति जगज्जननी श्रीसीताजी बहन हैं और परब्रह्म परमात्मा श्रीरामजी महाराज बहनोई-

सिया बहन बहनोई रामा।आदिशक्ति परब्रह्म ललामा।।

श्रीप्रेमरामायण आदि काव्य ही नहीं, श्रीवैदेहीदर्शन, प्रपत्ति दर्शन आदि गद्य ग्रन्थ भी मैथिल सख्य रस का रसपूर्ण व्याख्यात्मक आख्यान है। इन ग्रन्थों में शब्द ब्रह्म-निष्णात अनन्त विभूषित प्रेमावतार श्रीमद् स्वामी रामहर्षण दास जी महाराज का श्रीसीताराम युगल महामंत्र का मंत्रार्थ-निरूपण अंतः सलिला की भाँति हुआ है।

प्रभु की अहैतुकी कृपा-प्रेरणा से श्रीमद् स्वामिपाद द्वारा श्रीराम मंत्रार्थ मण्डपम् के रूप में श्रीराममंत्रार्थ की प्रतिष्ठा हो गयी है।

मैथिल सख्य रस के पोषण रूप-शिलान्यास हेतु ही संभवतः प्रस्तुत ग्रंथ ''श्रीहर्षण साहित्य में श्रीसीतामंत्रार्थ'' की रचना एकमात्र श्रीआचार्य प्रभु की जबरन कृपा से हुयी है। यह अर्थ ऐसा ही है, 'इदमित्थम्', न कहकर मंत्रनिष्ठ विद्वत् संत-समाज के समक्ष इसी प्रार्थना से अर्पित किया जा रहा है कि-

मोरि सुधारिहु सो सब भाँती। जासु कृपाँ नहिं कृपा अघाती।।
श्रीराम सुस्वामि कुसेवक मोसो। निज दिसि देखि दयानिधि पोसो।।

श्री आचार्य चरण-रेखाश्रित

श्रीराधाष्टमी, 2012 ई0

श्रीकृष्ण दास
(श्रीकृष्ण उपाध्याय)
श्रीरामहर्षण कुंज,
श्रीअयोध्याजी।

-आमुख-

(आ)

--इतिवृत्त--

1998 ई0 में सेवा-निवृत्ति के उपरान्त दास, लाल कोठी, ऋणमोचन घाट, श्रीअयोध्याजी (स्थायी निवास) से अनन्त श्री विभूषित श्रीमद् रामहर्षणदास जी महाराज जी श्रीसद्गुरुदेव की करुणा-कृपा से श्रीरामहर्षण कुंज, सिद्धि सदन 2001 ई0 में स्थायी रूप से आ गया। "निज अनुभव बिनु मन होई कि थीरा" -मन स्थिर हो गया। प्रातः, मध्याह्न, संध्या और रात्रि में सत्संग-मानसरोवर में आनन्द विभोर हो गया। अभी भी रघुनाथ-कालीन सत्संग-दरबार की प्रत्यक्षानुभुति जहाँ होती है, वहीं नित्य दिव्य अवध है- संत सभा अनुपम अवध।

2005 ई0 की घटना है। एक दिन श्रीप्रेमरामायण का पाठ कर रहा था। प्रथम मिथिला काण्ड के मंगल श्लोक सं0 7 व 8 में श्रीसीतामंत्र के बीजाक्षर का अर्थ-प्रकाश हुआ। दास ने आचार्य प्रभु से इसका निवेदन करते हुए श्रीसीतामंत्रार्थ सुनाने की प्रार्थना की। उन्होंने स्मित हास से कृपा कटाक्ष करते हुए 'चुपचाप' रहिए की डाँट सुनाई। दास ने इस विषय पर कुछ लिखने का संकल्प छोड़ दिया। इसके बाद दो-तीन वर्षों के अन्तर्गत जो भी आचार्यप्रभु के ग्रंथ पढ़ूँ उपर्युक्त विषय पर शीर्षक-क्रमानुसार सामग्री संकलित होती गयी।

2008 ई0 के जून में लोगों ने मेरी बाईं आँख में मोतियाबिन्द की सफेदी देखी। बाईं आँख की रोशनी बत्तीस वर्षों से लुप्तप्राय हो गई थी। केवल दाहिनी आँख से पढ़ता-लिखता रहा। किसी को कुछ पता नहीं चला। आचार्य प्रभु की तत्काल आज्ञा लेकर बाईं आँख का आपरेशन करा दिया लेकिन उसमें रोशनी नहीं आई। पूर्ववत् स्थिति ही बनी रही। नेत्र-सर्जन ने दूसरी (दाहिनी) आँख के आपरेशन का भी यथाशीघ्र परामर्श दिया।

मुझे चिन्ता हो गयी कि यदि दाहिनी आँख में भी आपरेशन के पश्चात् रोशनी नहीं आवे तब एक अन्धा क्या लिख-पढ़ सकता है ? आचार्यप्रभु द्वारा कृपा-प्रदत्त श्रीसीतामंत्रार्थ उन्हीं का अंश है। इसके ज्ञाता, कर्त्ता और भोक्ता वे ही हैं। दास को क्या अधिकार है कि दास इसे बिना प्रकट किए शरीर छोड़ दे? सरकार से दास ने अपनी चिन्ता प्रकट करते हुए इस पर कलम उठाने की आज्ञा माँगी। वे करुणापूर्ण नयनों से देखकर मौन हो गए। दास ने मौनं सम्मति लक्षणम् समझा। एक आँख का आपरेशन हो

चुका था। अधिक पढ़ना-लिखना मना था। अतः दिन में दो बजे से चार-पाँच बजे तक तेज रोशनी में मंत्र-मतवाले की स्थिति में लगभग एक महीना में जो कुछ भी लिखा पाया, वह आप मंत्रनिष्ठ विद्वत् संतों के कर-कमलों में अर्पित है। 2008 ई0 के नवम्बर मास में नेत्र-ज्योति केन्द्र के संस्थापक नेत्र-सर्जन डॉ0 ओमकार गंगवार, जो सूर्य-भगवान् के कृपापात्र हैं, उन्हीं 'जगत नेत्र सब सुख करण सूर्यभगवान्' ने दीन दास को वरण कर लिया, जिसके फलस्वरूप प्रस्तुत पंक्तियाँ आज लिखी जा रही हैं।

दास के शरीर का अब ठिकाना नहीं हैं, किसी दिन किसी समय यह शांत हो जाय। यह 'आमुख' भी 'हर्षण हृदय संस्थान (हार्ट केयर सेन्टर), फैजाबाद में, जिसके संस्थापक-संरक्षक हमारे हितैषी परम भागवत गुरुभाई डॉ0 अरुण कुमार जायसवाल हैं, उनके निजी संत कक्ष में बैठकर उन्हीं के प्रकाशन-निवेदन पर लिखा गया है। सभी संतों से श्रीरामप्रेम की याचना है क्योंकि-

सन्त हृदय श्रीराम हैं, राम हृदय सब संत।
सत पति-पत्नी सम विमल, नहीं प्रेम कर अंत।।
बार-बार वन्दन करौं, सुनहु सकल शुचि साधु।
शिशु सेवक निज जानिकै, दीजे प्रेम अगाध।।

संत कृपापात्र

श्रीकृष्ण दास (उपाध्याय जी)

श्रीरामहर्षण कुँज, अयोध्या सहित श्रीराम मंत्रार्थ मण्डपम् के महान्त एवं मैथिली सख्य रस परम्परा के द्वितीय रसाचार्य पद प्रतिष्ठित

श्री १००८स्वामी श्रीहरिदासजी महाराज

कृतज्ञता

"भैया" श्रीहरिदासजू, जिन दियो मोहि 'असंग'।

श्रीलक्ष्मीनिधि स्वयम् ही, अर्प्यो रामहि अंग।।

अंकाश्रित

श्रीकृष्ण दास

।।श्रीसीताराम।।

卐 श्रीहर्षण साहित्य में श्रीसीतामंत्रार्थ 卐

卐 अनुक्रमणिका 卐

क्रमांक	विषय	पृष्ठ
(क)	प्रकाशक की ओर से दो शब्द	
(ख)	भूमिका रूप श्रीमद् भागवत विद्यापीठ, श्री अयोध्या जी के आचार्य श्रीमद् स्वामी रामबालक जी महाराज का सुआशीर्वाद	
(ग)	आमुख 'अ' और 'आ'	
१–	शब्द ब्रह्म	१
२–	अक्षर विद्या	४
३–	श्रीसीतामंत्रोद्धार	८
४–	श्रीसीतामंत्र का पदच्छेद	९
५–	प्रथम पदार्थ निरूपण	१३
६–	शकारार्थ निरूपण	१३
७–	स्वरूपा शक्ति–मूलक शकार	१३
८–	देव शक्ति–मूलक शकार	१६
९–	जीव शक्ति–मूलक शकार	१७
१०–	श्रीसीता मूलक शकार	१८
११–	वाक्–मूलक शकार	२४
१२–	व्युत्पत्ति–मूलक शकार	२७
१३–	रकारार्थ निरूपण	२९
१४–	व्युत्पत्ति परक भाव	२९

क्रमांक	विषय	पृष्ठ
१५–	शक्ति-शक्तिमान भाव	३२
१६–	अपार्थक्य भाव	३५
१७–	श्रीजानकी-देह भूषाय भाव	३८
१८–	ईकारार्थ निरूपण	४२
१९–	अर्द्धं मात्रा निरूपण	४९
२०–	बिन्दु निरूपण	५८
२१–	नाद निरूपण	६४
२२–	'श्रीँ' बीज का शेष मंत्र में विस्तार	६९
२३–	द्वितीय पदार्थ निरूपण	७१
२४–	तृतीय पदार्थ निरूपण	७८
२५–	सखण्ड 'स्वाहा' एवं 'नमः' निरूपण	८३

परिशिष्ट

परिशिष्ट I –	श्रीहर्षण साहित्य सूची	९२
	श्रीहर्षण साहित्य के अनमोल बोल	
परिशिष्ट II –	झाँकी के पद	९३
परिशिष्ट III –	अवध में युगल झाँकी	९४
	(प्रिया प्रियतम का मनुहार)	
परिशिष्ट IV –	श्याल-भाम का मनुहार	९७
परिशिष्ट V –	चिदाकाश की चिन्मयी लीला	९८
परिशिष्ट VI –	आलोचना के कुछ अंश	९९

।। श्री रामः शरणं मम ।।

* शब्द ब्रह्म *

क्रमांक-1

ॐ, राम, कृष्ण, शिव, तत्सत् आदि भगवन्नामों का ब्रह्म रूप में निरूपण शब्द-ब्रह्म कहलाता है। परब्रह्म पुरूषोत्तम भगवान वेद वेद्य हैं अर्थात वेदों के आधार पर ही ब्रह्म और उनके वाचक शब्दों का ज्ञान प्राप्त होता है। माण्डूक्योपनिषद् (1-12) में कहा गया है कि 'ओम्' यह अक्षर ही पूर्ण ब्रह्म अविनाशी परमात्मा है। यह प्रत्यक्ष दिखाई पड़ने वाला संपूर्ण जड़-चेतनात्मक जगत सबका सब ओंकार ही है :-

ओम् इति एतत् अक्षरम् इदम् ँ सर्वम् तस्योपव्याख्यानं भूतं भवद्भविष्यत् इति सर्वम् ओंकार एव।

पुनः 'ओम्' की अ, उ, म और अमात्रा (अद्र्धमात्रा) इन चार मात्राओं का परब्रह्म के जाग्रत (वैश्वानर), स्वप्न (तैजस), सुषुप्ति (प्राज्ञ) और तुरीय (अमात्रा), इन चार पादों से अभेद निरूपण किया गया है।

प्रश्नोपनिषद् (5/2) में इसी तत्व का अनुमोदन किया गया है:-

परं चापरं च ब्रह्म यदोङ्कारः

-अर्थात् यह जो 'ॐ' है, वह अपने लक्ष्यभूत परब्रह्म परमेश्वर से भिन्न नहीं है इसलिए यही परब्रह्म है। यही परब्रह्म से प्रकट हुआ विराट् स्वरूप- अपर ब्रह्म भी है।

श्रीरामोत्तर तापनीयोपनिषद् में कहा गया है कि ॐकार अथवा राँ इस बीजमंत्रमय अक्षर को ही तुम 'तारक ब्रह्म' समझो। वही उपासना के योग्य है। वह गर्भ, जन्म, जरावस्था, मृत्यु, तथा सांसारिक महान् भय से भलीभाँति तार देता है। इसलिए 'तारक' इस नाम से इसका कथन किया गया है। जो इस तारक मंत्र का सदा जप करता है, वह संपूर्ण पापों को पार कर जाता है, वह मृत्यु को लाँघ जाता है, वह संसार से तर जाता है, सबको पार कर जाता है। वह जहां कहीं भी रहता हुआ अविमुक्त-क्षेत्र (काशी धाम) में ही रहता है। वह महान् होता है। वह अमृतत्व को प्राप्त होता है।

इसी उपनिषद् में आगे श्री ब्रह्मा जी सैंतालीस मंत्रों में परब्रह्म के सभी स्वरूपों, तारक ब्रह्म, ईश्वर के ब्रह्मादि आदि स्वरूपों, सरस्वती आदि देवियों, स्थावर-जंगम-नक्षत्रादि रूपों के रूप में ॐकार (अथवा राम्) शब्द की प्रार्थना करते हैं। उनमें एक तारक ब्रह्म की प्रार्थना इस प्रकार है-

ॐ (राम्) यो वै श्रीरामचन्द्रः स भगवान् यत् तारकं ब्रह्म भूर्भुवः स्वस्तस्मै वै नमो नमः

-अर्थात् ॐ (अथवा राम्), जो सुप्रसिद्ध श्रीरामचन्द्र जी महाराज हैं, वे अवश्य ही भगवान् हैं, तथा जो तारक ब्रह्म और भूः, भुवः, स्वः नाम से प्रसिद्ध तीन लोक हैं, वह सब कुछ उन्हीं का स्वरूप है। उन भगवान श्रीराम को मेरा बारंबार नमस्कार है।

श्री रामस्तवराज (श्लोक 5) में 'श्रीराम्' मंत्र को ही परम जाप्य बताते हुए इसे 'तारक ब्रह्म' नाम से पुकारा गया है।

श्री रामेति परं जाप्यं तारकं ब्रह्म संज्ञकम्
ब्रह्महत्यादि पापघ्नं इति वेदविदो विदुः

गोस्वामी तुलसीदास जी महाराज नाना पुराण निगमागम को मथकर यह सार सिद्धान्त घोषित करते हैं कि 'राम नाम' सर्वान्तर्यामी निर्गुण ब्रह्म से बड़ा तो है ही, सगुण दाशरथी राम से भी बड़ा है। सच्चिदानन्द परब्रह्म परमात्मा अन्तर्यामी रूप से संपूर्ण जड़ चेतन में व्याप्त है लेकिन संपूर्ण जीव-जगत दुःखित और नाशवान है। राम नाम के अर्थ, स्वरूप और माहात्म्य के ज्ञानपूर्वक नाम-साधन करने पर वह राममय, आनन्दमय बन जाता हैः-

व्यापकु एक ब्रह्म अविनाशी। सत चेतन घन आनँद रासी।
अस प्रभु हृदय अछत अविकारी। सकल जीव जग दीन दुखारी।
नाम निरूपण नाम जतन ते । सोउ प्रगटत जिमि मोल रतन ते।।

(मा/1/23)

पुनः सगुण कौशल्यानन्द वद्र्धन श्रीरामजी महाराज ने अपने भक्तों के लिए नर शरीर धारण किया लेकिन बहुत संकट सहकर देवताओं और संतो को सुखी किया लेकिन उनके राम नाम के प्रेम-विश्वास पूर्वक जपाराधन करने से उनके भक्त मोद और मंगल के स्वरूप हो जाते हैं। श्रीराम ने तो एक तपस्विनी का उद्धार किया लेकिन उनके राम नाम ने करोड़ो दुष्टों की कुमति सुधार दी-

राम भगत हित नर तनु धारी। सहि संकट किए साधु सुखारी।।
नामु सप्रेम जपत अनयासा। भगत होहिं मुद मंगल बासा।।
राम एक तापस तिय तारी। नाम कोटि खल कुमति सुधारी।।

(मा/1/24)

अतः निर्णय यह होता है कि निर्गुण और सगुण राम दोनों से उनका रान नाम बड़ा है-

निरगुन तें यहि भाँति बड़ नाम प्रभाउ अपार।
कहउँ नामु बड़ राम तें निज विचार अनुसार।।

आचार्य प्रभु श्रीमद् स्वामी राम हर्षण दास जी महाराज श्री प्रेमरामायण, विनयवल्लरी, हर्षण सतसई आदि ग्रंथों में पुनः -पुनः यह निरूपण करते हैं कि 'राम' नाम ही परब्रह्म है क्योंकि पूर्ण ब्रह्म की जो भी शक्तियां हैं, वे राम नाम में युक्तिपूर्वक स्थापित हैं-

पूर्ण ब्रह्म की यावत शक्ती। राम नाम थापी करि युक्ती।।

(प्रे0रा0/1/25)

राम नामैव परं बह्म.... (विनय व0/170)

रामबह्म संज्ञक सुखद, हर्षण रघुपति नाम।

हरत पाप ब्रह्मघ्न कर, कहत राम सियराम ।। (हर्षण सतसई, नाम0/दो050)

सोऽहं, प्रणव अथवा राम मंत्र सभी राम नाम से ही उत्पन्न होते हैं:-

सोऽहं प्रणव मंत्र श्रीरामा। राम नाम सों उपज ललामा।। (प्रे0रा0/1/25)

राम नामैव ओंकार सोऽहं राँ बीज कारण अच्युत अज प्रधामा।

(विनय व0/170)

बीज ओम् सोऽहं सुखद, तीनहु मंत्र महान।

राम नाम ते प्रगट गुन, हर्षण बात प्रमान (हर्षण सत0, नाम/38)

मंत्रशास्त्र के अनुसार कोई भी शब्द या वर्ण-समूह मंत्र नहीं होता। जिस मंत्र (शब्द) में जिस देवता ने अपना स्वरूप प्रतिष्ठित किया है वही मंत्र (शब्द) उस देवता का स्वरूप उद्घाटित कर सकता है। बृहत् गंधर्व तंत्र में कहा गया है कि

शृणु देवि प्रवक्ष्यामि बीजानां देवरूपताम्।

मंत्रोच्चारण मात्रेण देवरूपं प्रजायते।।

श्वेताश्वतर उपनिषद (1/14) में कहा गया है कि अपने शरीर को नीचे की अरणि बनाओ और प्रणवादिक मंत्रों को ऊपर की अरणि बनाओ। अभ्यास-पूर्वक ध्यानरूपी मंथन से हृदयस्थ परब्रह्म परमात्मा का साक्षात् दर्शन हो जायगा-

स्वदेहमरणिं कृत्वा प्रणवं चोत्तरारणिम्।

ध्यान निमर्थनाभ्यासात् देवं पश्येत् निगूढ़वत्।।

यज्ञ में अग्नि प्रकट करने के लिए दो अरणियों का मंथन किया जाता है। जिसे भगवत् प्राप्ति की प्रबल जिज्ञासा उत्पन्न हो गयी हो, वह बड़भागी जन सद्गुरू से मंत्र प्राप्त कर ले। पश्चात् अपने शरीर को नीचे की अरणि की भाँति निश्चल मन और निश्चयात्मिका बुद्धि से गुरू-प्रदत्त मंत्र का जिह्वा द्वारा जप करे। मन से उस मंत्र के अर्थस्वरूप परमात्मा का निरन्तर अभ्यासपूर्वक आराधन करने से अपने भावानुसार परब्रह्म परमात्मा का साक्षात्कार इसी शरीर में हो जाता है। 'सोई प्रगटत जिमि मोल रतन ते' द्वारा गोस्वामी जी इसी सत्यता की घोषणा करते है।

।। श्रीरामः शरणं मम ।।

क्रमांक-2

* अक्षर विद्या *

कर्म वह है, जो बंधन के लिए न हो और विद्या वह है, जो बंधन से मुक्त कर दे:-

तत्कर्म यन्न बन्धाय, सा विद्या या विमुक्तये।

ऋषियों ने इसी विद्या के प्रकाश में अनन्त सच्चिदानन्द स्वरूप परब्रह्म का साक्षात्कार किया और आचार्य परंपरा द्वारा अपने शिष्यों को साक्षात्कार कराया। इसी विद्या को ब्रह्मविद्या कहा। श्रीमद्भगवद्गीता (10/32) में भगवान् कहते हैं कि मैं विद्याओं में अध्यात्मविद्या अर्थात् ब्रह्मविद्या हूँ-अध्यात्मविद्या विद्यानाम्। मुण्कोपनिषद् (1/1/1-5) में कहा गया है कि मनुष्य के लिए जानने योग्य दो विद्याएं हैं- एक परा और दूसरी अपरा। जिसके द्वारा इस लोक और परलोक संबंधी भोगों और उनकी प्राप्ति के साधनों का ज्ञान प्राप्त किया जाता है, उसे अपरा विद्या कहते हैं। ऋग्वेदादि चारो वेद और शिक्षा, कला, व्याकरण, निरुक्त, छन्द तथा ज्योतिष, ये षड्ङ्ग वेद अपरा विद्या है। जिसके द्वारा परब्रह्म अविनाशी परमात्मा का तत्वज्ञान होता है, वह परा विद्या है-

अथ परा यया तदक्षरमधिगम्यते।

परा विद्या को ही ब्रह्मविद्या कहते हैं क्योंकि इससेपरब्रह्म के पर और अपर स्वरूपों का ज्ञान होता है। यह ब्रह्मविद्या संपूर्ण विद्याओं की आश्रयभूता है-

स ब्रह्मविद्यां सर्व विद्या प्रतिष्ठाम्

ब्रह्मविद्या की प्राप्ति आचार्य परंपरा द्वारा होती है। मुण्कोपनिषद् (1/1/1-3) से ज्ञात होता है कि श्री ब्रह्मा जी ने अपने ज्येष्ठ पुत्र महर्षि अथर्वा को सर्व प्रथम ब्रह्मविद्यां का उपदेश दिया। अथर्वा ने अंगी ऋषि को, अंगी ऋषि ने सत्यवह नामक ऋषि को,सत्यवह ने भारद्वाज ऋषि को और भारद्वाज ने अङिगरा नामक ऋषि कोब्रह्मविद्या का उपदेश दिया।

ब्रह्मसूत्र (3/3/58) को 'नाना शब्दादि भेदात्' सूत्र की व्याख्या करते हुए वेदान्त दर्शन (पृ0 283) में आचार्य प्रभु श्रीमद् स्वामी रामहर्षणदास जी महाराज कहते हैं कि ''सद् विद्या, भूम विद्या, दहर विद्या, उपकोसल विद्या, शाण्डिल्य विद्या, वैश्वानर विद्या, आनन्दमय विद्या, अक्षर विद्या इत्यादि पृथक्-पृथक् नाम व विधि-विधान की पृथकता से संयुक्त है..... लेकिन सभी विद्याओं का फल एक ब्रह्मप्राप्ति है। किसी भी एक विद्या का अनुष्ठान करके ब्रह्म प्राप्ति की जाती है। अक्षर विद्या ब्रह्म विद्या ही है। इसमें भगवान के एक नाम में विराट्रूप का निरूपण किया जाता है। एक शब्द में अग्नि आदि देवता अंग

बनकर आते हैं। मंत्र और उसका बीज कतिपय अक्षरों का होता है परन्तु उसमें विधि, हरि, हर आदि सभी देवता स्थित होते हैं।

मंत्र परम लघु जासु बस विधि हरि हर सुर सर्व (बा/1/256)

मंत्र में प्रयुक्त विभिन्न वर्ण, स्वर, व्यंजन, नाद और विन्दु उस देवता के विभिन्न रूप प्रकट करते हैं और सम्पूर्ण मंत्र से सम्बद्ध देवता का पूर्ण रूप प्रकट होता है। किसी देवता का विशिष्ट मंत्र स्वयं देवता होता है। मंत्र स्वयं देवता है, यह साधना से ही अनुभव किया जा सकता है।

तंत्रों में बीजमंत्रों की विशद् व्याख्या मिलती है। बीजमंत्र एक ही अक्षर का होता है लेकिन इसमें प्रयुक्त स्वर, व्यंजन के अलग-अलग अर्थ होते हैं। जैसे ह्रीँ बीज मंत्र में ह्, र्, ई, नाद और बिन्दु ये पांच तत्व हैं, जिनके अलग-अलग अर्थ हैं। हकार का अर्थ है शिव, रकार का अर्थ है प्रकृति (शक्ति), 'ई' का अर्थ है महामाया, नाद का अर्थ है जगत प्रसविनी जगज्जननी और बिन्दु का दुःखहारिणी। इस बीज से भुवनेश्वरी की पूजा का विधान है-

हकारः शिव वाची स्याद् रेफः प्रकृति रुच्यते। महामायार्थ ई शब्दो नादो विश्वप्रसूः स्मृतःदुःखहरार्थको बिन्दु भुवनांग तेन पूजयेत् (वारदा तंत्र)

इसी प्रकार काम बीज 'क्लीं' में क्+ल्+ई+नाद+बिन्दु का संयोग है (कलं वामदृशां मनोहरम्)। इसमें ककार सच्चिदानन्द-विग्रह नायक श्रीकृष्ण का वाचक है। ल-कार प्रिया-प्रियतम के मिलनात्मक प्रेमसुख का वाचक है। ई-कार महाभाव-स्वरूपा मूल प्रकृति श्री राधा जी का वाचक है। नाद-बिन्दु परस्पर चुम्बन-आलिंगनादि माधुर्य का वाचक है-

ककारो नायकः कृष्णः सच्चिदानन्द-विग्रहः।
ईकारः प्रकृती राधा महाभाव स्वरूपिणी।।
लश्चानन्दात्मकः प्रेमसुखं च परिकीर्तितम्।
चुम्बनाश्लेष माधुर्यं बिन्दु नादं समीरितम्।।

(श्री हनुमान प्रसाद पोद्दार रचित श्री राधा माधव चिन्तन, पृ0 915)

वैष्णव मताब्ज भास्कर में स्वामी रामानन्दाचार्य जी महाराज 'राम' नाम के र, अ और म अक्षरों का अर्थ-निरूपण करते हुए कहते हैं कि रकार सगुण परम दिव्य ऐश्वर्य समुद्र श्रीरामचन्द्र जी महाराज का वाचक है। मकार मनसा-वाचा-कर्मणा सकल प्रकार श्रीराम नित्य कैंकर्य परायण श्री सुमित्रानन्दन जी जीवाचार्य हैं। मध्यगत अकार रकार ब्रह्म और मकार जीव के परस्पर नित्य संबंध प्रदान करनेवाली श्री किशोरी जू का वाचक है-

रकारार्थो रामः सगुण परमैश्वर्य जलधिः
मकारार्थो जीवः सकल विधि कैंकर्य निपुणः।

तयोर्मध्याकारो युगलमथ संबंध मनयोः
अनन्यार्हं ब्रूते त्रिनिगम सरूपोऽयमतुलः।।

श्रीरामोत्तर तापनीयोपनिषद् में ॐ के छःह तत्वों (अ,उ,म, अर्द्धमात्रा, अनुस्वार और नाद) के वाच्य क्रमशः श्री लखनलाल, श्री शत्रुघ्नलाल, श्री भरतलाल, भगवान राम और जगज्जननी श्री विदेहराजनन्दिनी जू कहे गए हैं।

परब्रह्म पुरूषोत्तम श्रीराम जी महाराज जिस प्रकार सच्चिदानन्द स्वरूप हैं, उसी प्रकार उनका नाम 'राम' भी।

श्रीराम नाम में रकार चित्-वाचक है, अकार सत् का वाचक है और मकार आनन्द का वाचक है-

चित् वाचको रकारः स्यात्, सत् वाच्याकार उच्यते।
मकरानन्द वाची स्यात् सच्चिदानन्द मव्ययम्।। (महारामायण/53/53)

शारदातिलक तंत्र (पृ0 626) में कहा गया है कि 'राम' नाम का रकार, अग्नि और रुद्र का वाचक है, मकार चन्द्रमा और विष्णु का वाचक है तथा मध्यगत आकार सूर्य और ब्रह्मा का वाचक है-

रेफोग्निऽहमेवोक्तो विष्णुः सोमो म उच्यते।
मध्यगस्त्वावयोर्ब्रह्मा रविराकार उच्यते।।

गोस्वामी जी राम नाम की वन्दना करते हुए कहते हैं कि राम नाम अग्नि, सूर्य, और चन्द्रमा का हेतु (अर्थात कारण और बीज दोनों) है। राम नाम ब्रह्मा-विष्णु-शिव स्वरूप है तथा ॐकार (वेद प्राण) के समान है-

बंदउँ राम नाम रघुबर को। हेतु कृसानु भानु हिमकर को।
विधि हरि हर मय वेद प्रान सो। अगुन अनूपम गुन निधान सो।।
(म0/1/19)

श्रीप्रेमरामायण (1/25) में श्रीराम नाम की वंदना करते हुए आचार्य प्रभु रामपूर्व तापनीयोपनिषद्- सम्मत वाणी का विसर्ग करते हैं-

वन्दहुँ राम नाम रघुराई । सहित नाम सीता सुखदाई।।

विधि हरि हर निज शक्ति समेता। प्रकट रकारहिं ते श्रुति वेता।। विनय वल्लरी (पद 170) में इसकी पुष्टि मिलती है-

विधि हरि हर सह सर्व शक्ति, अग्नि सूर्य चन्द्र प्रगट, राम-नामात् रामा।

इस प्रकार अक्षर विद्या वह है, जिसके विधिवत् ज्ञान प्राप्त होने पर परब्रह्म पुरूषोत्तम भगवान का इसी शरीर में साक्षात्कार हो जाता है। इसीलिए इसे ब्रह्म विद्या कहते हैं ब्रह्म जिज्ञासु की बुद्धि जब आचार्य कृपा से सूक्ष्म होकर शब्द के अक्षरों में स्थित हो जाती है,

तब उस शब्द ब्रह्म के वाच्य प्रभु सगुण साकार होकर उसे वरण कर लेते हैं। भगवत्प्राप्ति के पाँच उपायों में प्रपत्ति और आचार्याभिमान सर्वश्रेष्ठ उपाय बताये गये हैं। अक्षर विद्या के एकमात्र प्रदाता शब्द ब्रह्म निष्णात सद्‌गुरूदेव ही हैं। अन्य कोई उपाय नहीं। जिस निर्गुण ब्रह्म का निरूपण वेद नेति नेति कहकर मौन हो जाते हैं, वही बुद्धि गोचर ही नहीं नयन गोचर हो जाते हैं। अखंड ज्ञानैक रसनिष्ठ श्री जनक जी का यह अनुभव प्रमाण है-

व्यापकु ब्रह्म अलख अविनासी। चिदानंदु निरगुन गुनरासी।
मन समेत जेहि जान न बानी। तरकि न सकहिं सकल अनुमानी।।
महिमा निगम नेति कहि कहई । जो तिहुँ काल एकरस रहई।।
नयन विषय मो कहुँ भयउ, सो समस्त सुखमूल।
सबइ लाभु जगजीव कहँ, भएँ ईसु अनुकूल।। (म0/1/341)

श्रीप्रेमरामायणकार अपना अनुभूत सिद्धान्त कहते हैं कि जो आदर-पूर्वक राम नाम का आराधन करता है, उसके हृदय में ब्रह्म का परम प्रकाश प्रकाशित हो जाता है। वह स्वयं आनन्दमय, अमृतमय, परम प्रेममय और शान्ति-स्वरूप हो जाता है। वह जापक स्वयं मंत्र-स्वरूप, शब्द ब्रह्म-स्वरूप होकर जगत को तारने लगता है। मंत्र के सभी तत्वों का उसमें वास हो जाता है। फलस्वरूप वह जापक स्वयं अग्नि, सूर्य और चन्द्रमा के गुणों, धर्मों का धारक हो जाता है। ऐसे नाम रसिक निष्काम भक्तों के पीछे-पीछे नामी प्रभु संगी हो जाते हैं। वह सच्चिदानन्द प्रभु के सत्यकाम, सत्यसंकल्प आदि धर्मों को धारण कर लेता है-

सादर जपे नाम जो पावन। परम प्रकाश तासु उर छावन।।
आनँदमय बनि बनै विज्ञानी। होइ अमृत नित सुख सरसानी।
परम प्रेम पावै हरि केरा। शान्ति हिये नित करै बसेरा।।
मंत्र समान आपु है जावै। जगत उघारन शक्ती पावै।।
अग्नि सूर्य चन्दा गुन आवत। तासु रूप बनि सबहि बनावत।।
नाम रसिक हरिदास जे, प्रभु प्रेमी निष्काम।
तिन सँग नित पीछे फिरत, रसिया रघुबर श्याम।।
सत्यकाम संकल्प सत, सतचित आनँद रूप।
निज स्वरूप लहि नाम रत, दरश करैं नरभूप। (प्र/1/25)

***

।। श्री सीताराम जय सियाजू राम ।।

क्रमांक- 3

* श्री सीतामंत्रोद्धार *

श्रीशारदा तिलक तंत्र (पृ0 630) में श्रीसीता मंत्र का उद्धार (प्राकट्य) इस प्रकार मिलता है-

पूजयेद् वैराणवे पीठे मूर्ति मूलेन कल्पयेत्।
श्री ँ सीतायै द्विठान्तेन सीतां पार्श्वगतां यजेत्।।

इसकी व्याख्या करते हुए कहा गया है कि-

" श्री ँ सीतायै स्वाहा" इति अयं स्वतंत्रोऽपि मंत्रः।
सीतामंत्रोऽपि कथितः स्वतंत्रोऽङ्गपरोऽपि च।

अर्थात् 'श्री ँ सीतायै स्वाहा', इस संरचना को सीतामंत्र कहते हैं। श्रीसीतामंत्र स्वतंत्र भी है और श्रीराममंत्र का अंग भी। वृ0 विष्णु पुराण में इसकी सम्मति प्राप्त होती है।

द्वौ च नित्यं द्विधा रूपं, तत्वतो नित्यमेकता।
राममंत्रे स्थिता सीता, सीतामंत्रे रघूत्तमः

-अर्थात् श्रीसीताजी और श्रीरामजी दोनों नित्य हैं। तत्वतः दोनों एक हैं, अभिन्न हैं, अपृथक् हैं लेकिन आनन्दमयी लीला हेतु दो भिन्न रूपों में प्रकट होते है। इस तत्व का ज्ञान इसीसे कर लेना चाहिए कि राममंत्र में रामवल्लभा श्रीसीताजू स्थित हैं और सीतामंत्र में सीतावल्लभ श्रीरामजी स्थित हैं। गोस्वामी जी इसी तत्व की ओर संकेत करते हैं-

गिरा अरथ जल वीचि सम, कहियत भिन्न न भिन्न ।
बंदउँ सीताराम पद, जिन्हहिं परम प्रिय खिन्न।।

(मा0/1/18)

श्रीशारदा तिलक के टीकाकार राघव भट्ट स्कन्दयामल निर्वाण खण्ड में वर्णित श्रीसीतामंत्रोद्धार का भी प्रमाण उद्धृत करते हैं-

ब्रह्मा गृणाति त्वत्छक्तिं देवीं वाचं त्वदाप्तये।
विर्ष्णुध्यायति त्वामेव सुषुम्णां पारमेश्वरीम्।।
सीतामुपास्ते व्योमान्तरीश्वरो विन्दु रूपिणीम्।
सदाशिवां नादमयीं रवातीतामुन्मनीं शिव।।

अगस्त्य संहिता में वर्णित इस मंत्र के ऋषि छन्दादि का उद्धरण भी शारदातिलक में इस प्रकार मिलता है-

जनकोऽस्य ऋषिः छन्दो गायत्रं देवता मनोः।
सीता भगवती प्रोक्ता श्रीँ बीजं शक्तिरन्तजौ।।
दीर्घस्वर युजाद्येन षड्ङ्गानि प्रकल्पयेत्।
पूजयेद् वैष्णवे पीठे ध्यायेद् राघव संयुताम्।।
सुवर्णाभाम्बुजकरां रामावलोकन तत्पराम्।
वर्ण लक्षं जपेत् मंत्रं इष्टार्थान् साधयेत् ततः।।

पंडित श्रीकान्त शरण जी महाराज 'उद्भव स्थिति संहार कारिणीम् क्लेश हारिणीम् सर्वश्रेयस्करीं सीतां नतोऽहं रामवल्लभाम्।। (मा0 1/मं0)की व्याख्या (मा0पी0, पृ0 24) करते हुए कहते हैं कि "सीतामंत्र का प्रथमाक्षर बिन्दुयुक्त श्री बीज है, वह "श्री" शब्द शृ विस्तारे, श्रण दाने गतौ च, शृ हिंसायाम्, श्रु श्रवणे, और श्रिञ् सेवायाम् धातुओं से निष्पन्न होकर क्रम से सृष्टि-विस्तार रूप उत्पत्ति, स्थिति, संहारकारिणी, श्रीराम जी को जीवों की प्रार्थना सुनाकर रक्षा करने से क्लेश-हारिणी और चराचर से सेवित होकर उनका कल्याण करने से सर्वश्रेयस्करी, ये पांच अर्थ देता है। "श्री" का अर्थ शोभा भी है। अपनी शोभा से श्रीराम जी को वश करने से उनकी वल्लभा है।

अतः 'रामवल्लभा' 'श्री' का छठां अर्थ है। 'श्रीँ' बीज के अतिरिक्त शेष चतुर्थी सहित सीता शब्द इस श्लोक के 'सीता' से और मंत्र का अन्तिम 'नमः' शब्द यहाँ के 'नतः' से अर्थ में अभेद है। अतः यह श्लोक श्रीसीतामंत्र का अर्थ ही है।"

क्रमांक-4 -: श्रीसीतामंत्र का पदच्छेद :-

पं0 श्रीकान्त शरण जी महाराज ने श्रीराममंत्रार्थ पद्धति से श्रीसीतामंत्र का पदच्छेद (मा0पी0, पृ025) किया है-

"श्री अग्रस्वामीजी ने जिस प्रकार श्रीराममंत्र के बीज का अर्थ किया है, उसी ढंग से हम श्रीजानकीमंत्र के बीज का अर्थ कर सकते हैं। तद्नुसार शकार श्रीजानकी जी का और रकार श्रीराम जी का वाचक है। (ध्यान रहे कि ये दोनों 'श' और 'र' लुप्त चतुर्थ्यन्त हैं अर्थात् 'श' = श्रीसीता जी के लिए और र = श्रीरामजी के लिए) ईकार का अर्थ है अनन्य अर्थात् यह जीव श्रीसीतारामजी के लिए ही है, दूसरे किसी के लिए

नहीं।(यह शब्द लुप्त प्रथमान्त है) मकार का अर्थ है जीव। महात्माओं से इस बीज के अर्थ के विषय में एक श्लोक सुना जाता है-

शकारार्थस्सीता सुछवि करूणैश्वर्य विभवा।
ईकारार्थो भक्तिः स्वपतिवश युक्त्युज्ज्वलरसा।।
सुरेफार्थो रामो रमणधामः प्रियवशो।
मकारार्थो जीवो रसिकयुग सेवासुखरतः।।

यह श्लोक अगस्त्य संहिता का बताया जाता है परन्तु उपलब्ध अगस्त्य संहिता में नहीं मिलता। श्रीरामटहलदास जी 'युगल अष्टयाम सेवा' नामक पुस्तिका में श्रीजानकी मंत्र का अर्थ 'अनियुक्त सारावली' का प्रमाण देकर यही बतलाते हैं-

प्रोक्ता सीता सकारेण रकाराद्राम उच्यते।
ईकारादीश्वरो विधान्मकाराज्जीव ईरितः।
श्री शब्दस्य भावार्थः सूरिभिरनुमीयते।।

श्री चित्रकूट के परमहंस श्री जानकीवल्लभ दास जी ने भी अपने 'श्रीसीतामंत्रार्थ' (सं0 1999 वि0) में भी लगभग ऐसा ही लिखा है।

श्री रामोत्तर तापनीयोपनिषद् (उपनिषद् अंक, पृ0 542-43) में 'ॐ' का पदच्छेद और 'राँ' बीज से अभिन्नता का प्रतिपादन इस प्रकार मिलता है-

''ॐकार में प्रथम अक्षर अकार है, दूसरा अक्षर उकार है, तीसरा अक्षर मकार है, चौथा अक्षर अर्धमात्रा है, पंचम अक्षर अनुस्वार है और छठा अक्षर नाद है। (इस प्रकार छःह अक्षर वाला तारक मंत्र होता है) यह सबको तारने वाला होने से तारक कहलाता है। उस ॐकार अथवा 'राँ' इस बीजमंत्रमय अक्षर को तुम 'तारक ब्रह्म' समझो। जैसे सब कुछ 'ओम्' है, वैसे 'राँ' भी है। 'राँ' औरॐ में माहात्म्य और महिमा की दृष्टि से कोई अन्तर नहीं है।

सुमित्रानन्दनश्रीलक्ष्मणजी प्रणव के अकार अक्षर से प्रादुर्भूत हुए हैं। ये जाग्रत के अभिमानी 'विश्व' के रूप में भावना करने योग्य हैं। शत्रुघ्न स्वप्न के अभिमानी 'तैजस्' रूप हैं, इनका आविर्भाव प्रणव के 'उ' अक्षर से हुआ है। श्रीभरत जी सुषुप्ति के अभिमानी 'प्राज्ञ' रूप हैं। ये प्रणव के 'म' अक्षर से प्रकट हुए हैं। भगवान राम प्रणव की अर्द्धमात्राके रूप हैं। ये ही तुरीय पुरूषोत्तम हैं। ब्रह्मानन्द ही एक मात्र इनका विग्रह है। श्रीराम के सामीप्य मात्र से जो सम्पूर्ण देहधारियों की उत्पत्ति, पालन और संहार करनेवाली हैं, वे जगदानन्ददायिनी विदेहनन्दिनी श्रीसीताजी नाद-विन्दु-स्वरूपा हैं। वे ही

मूल 'प्रकृति' के नाम से जानने योग्य हैं। प्रणव से अभिन्न होने के कारण ही उन्हें ब्रह्मवादी जन 'प्रकृति'कहते हैं-

अकाराक्षर संभूतः सौमित्रिर्विश्वभावनः।
उकाराक्षर संभूतः शत्रुघ्नस्तैजसात्मकः।।
प्राज्ञात्मकस्तु भरतो मकाराक्षर संभवः।
अर्धमात्रात्मको रामो ब्रह्मानन्दैक विग्रहः।
श्रीराम सांनिध्यवशात् जगदानन्द दायिनी।
उत्पत्ति स्थिति संहारकारिणीं सर्व देहिनाम्।
सा सीता भवति ज्ञेया मूल प्रकृति संज्ञिका।
प्रणवत्वात् प्रकृतिरिति वदन्ति ब्रह्मवादिनः।।

"श्रीँ सीतायै नमः"अथवा "श्रीँ" सीतायै स्वाहा" को सीतामंत्र कहते हैं। 'नमः' और 'स्वाहा' एकार्थक शब्द हैं-

नमः स्वस्ति स्वाहा स्वधा लं वषड् योगाच्च (पाणिनि/2/3/16) अर्थात् नमः, स्वस्ति, स्वाहा, स्वधा, वषट् एकार्थक हैं। लिंग-भेद एवं क्रिया-भेद के अनुसार इनका मंत्र के अन्तिम पद में प्रयोग होता है।

उपयुर्क्त श्रीसीतामंत्र में तीन पद हैं:-

प्रथम पद 'श्रीँ, द्वितीय पद 'सीतायै' और तृतीय पद 'नमः' अथवा 'स्वाहा'। इन तीनों पदों में कुल मिलाकर छःह अक्षरों का प्रयोग हुआ है इसलिए इसे षडक्षर मंत्र कहते हैं:-

(1) श्रीँ (2) सी (3) ता (4) यै (5) न (6) मः अथवा (5) स्वा (6) हा

श्री सीतामंत्र के प्रथम पद 'श्रीँ' को बीज कहते हैं। जिस प्रकार बीज में संपूर्ण वृक्ष स्थित रहता है, उसी प्रकार बीजाक्षर में शेष मंत्र स्थित रहता है। जिस प्रकार बीज का विस्तार वृक्ष होता है, उसी प्रकार बीजाक्षर का विस्तार शेष मंत्र होता है, जिसे मंत्र निरूपण में 'विवरण' कहते हैं। 'श्रीँ' बीज में छःह तत्व हैं:-

(1) श् (2) र् (3) ई (4) अर्द्धमात्रा (5) विन्दु (अनुस्वार) और (6) नाद। इस प्रकार मंत्रार्थ-निरूपण की दृष्टि से श्रीसीतामंत्र में कुल द्वादश अंग हैं:-

(1) श् (2) र् (3) ई (4) अर्द्धमात्रा (5) विन्दु (6) नाद (7) सी (8) ता (9) यै (10) न (11) मः (12) नमः अथवा (10) स्वा (11) हा (12) स्वाहा।

श्री वैष्णवाचार्य प्रभु अनन्त श्री विभूषित स्वामी राम हर्षण दास जी महाराज जी श्री प्रेमरामायण के प्रथम काण्ड मिथिलाकाण्ड में मंगलाचरण (प्रे/1/मं07-8) करते हुए श्रीविदेहराज नन्दिनी जू के 'श्रीँ' बीज का अर्थ गुप्त रीति से प्रदान करते हैं:-

आदिशक्तिं महामायां, वन्देऽहं रामवल्लभाम्।
अभयश्रेयसां-दात्रीं, जीव रक्षण तत्पराम्।।
नित्यां महाभावरूपां, ब्रह्माण्डानन्त कारिणीम्।
विदेह तनयां सीतां, लक्ष्मीनिध्यनुजां प्रियाम्।।

- उपयुर्क्त मंगलाचरण में 'आदिशक्ति' और 'सीता', श्रीँ बीज के शकार के वाच्य हैं। 'रामवल्लभाम्' पद बीज के रकार का वाच्य है। 'महामायां' ईकार-वाच्य है। 'नित्यां महाभावरूपां' अर्द्धमात्रा का वाच्य है। 'अभयश्रेयसां दात्रीं जीवरक्षणतत्पराम्' पद बीज के विन्दु का वाच्य है और 'ब्रह्माण्डानन्त कारिणीम्' नाद-वाच्य है।

जिस प्रकार 'श्रीँ' बीज में ईकार 'श' और 'र्' दोनों को आवृत्त किये हुए है, उसी प्रकार 'विदेह तनयां' और 'लक्ष्मीनिध्यनुजां' पद अपने पितृ और भ्रातृ (फलतः जामाता और भाम) संबंधों से 'सीतां' पद को दोनों तरफ से घेरे है। अतः बीज का ईकार श्रीविदेहराज एवं श्री लक्ष्मीनिधि जी का भी वाचक है।

उपयुर्क्त मंगलाचरण में निम्नलिखित छःह संबंधों (श्री प्रेमरामायण प्रणाम भाष्य, पृ068) से श्रीजनकराज किशोरी जू की वंदना की गयी है:-

(1) शक्ति संबंध (आदिशक्तिं महामायां ब्रह्माण्डानन्त कारिणीम्) (2) ब्रह्म संबंध (रामवल्लभाम्) (3) परम प्रेम संबंध (नित्यां महाभावरूपां) (4) पितृ संबंध (विदेह तनयां) (5) भ्रातृ संबंध (लक्ष्मीनिध्यनुजां प्रियाम्) और (6) जीव संबंध (अभयश्रेयसां-दात्रीं, जीव रक्षण तत्पराम)

उपयुर्क्त मंगलाचरण के आधार पर 'श्रीँ' बीज का अर्थ-निरूपण इस प्रकार किया जा सकता है:-

शकारो सीता (शक्ति)-वाची स्यात्, रकारो राम उच्यते।
महामायार्थ (कुलार्थको च) ई वर्णो, अर्द्धमात्रा तुरीय च।।
दुःख हरार्थको बिन्दु, नादो विश्वप्रसूः स्मृतः।
सीतामंत्र बीजस्य, पदच्छेदार्थ उच्यते।।

***

।। श्री सीताराम जय सियाजू राम ।।

क्रमांक- 5 (क)प्रथम पदार्थ-निरूपण

श्रीसीतामंत्र का प्रथम पद 'श्रीं' बीज षडैश्वर्य मूलक है। बीज के छःह तत्व षडैश्वर्य वाचक हैं। (1) श् (2) र् (3) ई (4) अर्द्धमात्रा (5) विन्दु और (6) नाद,इन छःह तत्वों का श्री आचार्य कृपा से क्रमशः निरूपण किया जा रहा है। इसमें मंत्रनिष्ठ संतों को जो रूचिकर प्रतीत हो, वह तो श्री आचार्य कृपा मानेंगे और जो अरूचिकर प्रतीत हो, उसे अल्पबुध्दि वाले दास का मानकर शिशुवत् लालन-पालन करने की कृपा करेंगे।

कमांक- 6 (1) शकरार्थ-निरूपण

'श्रीँ' बीज का 'शकार' (1) शक्ति-मूलक (2) सीता मूलक (3) वाक्-मूलक और (4) व्युत्पत्ति मूलक है।

(1) शक्ति-मूलक 'शकार' के अन्तर्गत त्रिविध शक्तियां हैं (अ) स्वरूपा शक्ति (आ) देव शक्ति और (इ) जीव शक्ति।

क्रमांक- 7 (अ) स्वरूपा शक्ति मूलक शकार

श्री सीतोपनिषद् (उपनिषद् अंक का पृ0 657) में कहा गया है कि ''शक्तिरूपा ही श्रीसीताजी हैं। मूल प्रकृति-स्वरूपा होने के कारण श्रीसीताजी ही प्रकृति कहलाती हैं। वे श्री सीताजी प्रणव की प्रकृतिस्वरूपा होने से भी प्रकृति कही जाती हैं। श्रीसीताजी श्रीराम की सन्निधि के कारण जगदानन्दकारिणी हैं। समस्त शरीर धारियों की उत्पत्ति, स्थिति और संहार करने वाली हैं। श्रीसीताजी को मूलप्रकृति कही जाने वाली षडैश्वर्य संपन्ना भगवती जानना चाहिए।

ब्रह्मसूत्र (3/2/31) की व्याख्या विशेष करते हुए आचार्य प्रभु श्रीस्वामिपाद श्रीमद् रामहषर्ण दास जी महाराज कहते हैं कि ''पुरूषोत्तम भगवान की स्वरूपा शक्ति जो अचिन्त्य तथा परब्रह्म परमात्मा से अभिन्न है, वह ब्रह्म की दोनों स्थितियों

(कारण-कार्य-अवस्था) में ब्रह्म के स्वरूप से पृथक् नहीं होती है अर्थात् उसके अन्तर्भुक् उसी प्रकार रहती हैं जैसे मीठे पदार्थों में उसकी मिठास। इसी स्वरूपा शक्ति की इच्छा व शक्ति से जगत की कारणभूता परा और अपरा शक्तियां कार्यरूप जगत बनकर दिखाई देती है। यही स्वरूपा शक्ति परब्रह्म के सत्+चित्+आनन्द स्वरूप के अन्तर्भुक् होने से संधिनी, संवित् और आह्लादिनी तीन रूपों की कही जाती है। इस अपनी त्रयविद्या स्वरूपा शक्ति से परब्रह्म सत्, चित् और आनन्द को स्वरूपतः सुरक्षित रखने में स्वाभाविक समर्थ रहता है तथा इसी त्रयधा शक्ति के संकेत से जीव-जगत में कर्म-प्रवृत्ति, ज्ञानाप्ति और आनन्द की अनुभूति हुआ करती है।''

वैदेही दर्शन (पृ0 2-3) में आचार्य प्रभु स्वामी जी कहते हैं कि ''वैदेही, देह-विहीन अर्थात् प्रकृति संबंध स्पर्श-शून्य, सच्चिदानन्दात्मैक स्वरूप परब्रह्म की स्वरूपा शक्ति को दीर्घदर्शी मनीषी लोग वैदेही कहकर श्रुति संकलित वाक्यों को प्रमाणित किया करते हैं। त्रिमात्रिक (अ+उ+म)ओम् की वाच्या किन्तु उससे सर्वथा विलक्षण परब्रह्म के चतुर्थपाद स्वरूपा वैदेही का अनिर्वचनीय एवं अचिन्त्य वैभव है। अ+उ+म् इन तीन मात्राओं से रहित ओम् का सच्चिदानन्दात्मक स्वयं सिद्ध स्वरूप है, जो परमात्मा के चतुर्थपाद अर्थात् विश्व, तैजस्, प्राज्ञ, इन तीन पादों के कारणभूत, चतुर्थपाद परमात्मा के समान है, इस त्रैमात्रा-विहीन सच्चिदानन्दात्मक, ॐ के सत्ता की सुरक्षा स्वरूपा शक्ति से ही संभव है अर्थात् वैदेही ही ओम् के ओमत्व का संरक्षण करने वाली हैं। सीता जी को ओम् रूपिणी कार्य कारण की एकता विचार करके कहा गया है।''

श्री प्रेमरामायण (1/368) में शंकरजी अन्य देवताओं को श्रीसीताजी के स्वरूप का प्रकाशन करते हुए कहते हैं कि -

आदिशक्ति अहलादिनि सीता । राम प्रिया जग जननि पुनीता।।
विधि हरि हर सब अमित सुदेवा । उपजहिं राम अंश गुनि लेवा।।
सती विधात्री इन्दिरा, उपजहिं अगनित अंश ।
जनक लडैती सो सिया, प्रगट भई निमि वंश।।

श्री प्रेमरामायण (2/307) में श्री याज्ञवल्क्य जी महाराज सीता तत्व का निरूपण करते हुए कहते हैं कि -

परब्रह्म श्रीराम गोसॉई । आत्मा तासु सिया सुखदाई।।
परमाह्लादिनि शक्ति अनूपी । अपृथक् ब्रह्म सिया सुखरूपी।।
शक्ति अचिन्त्य ब्रह्म नहिं जानी । महा महिम्ना सिय गुण-खानी।।
उपजहिं जासु अंश बहुतेरी । शक्ति करन जग कार्य घनेरी ।।

'ॐ नमो भगवते रामचन्द्राय' द्वादशाक्षर मंत्र का जप सिद्ध होने पर मनुशतरूपा ने जिस युगल प्रभु का दर्शन किया था, वे श्रीसीताराम जी ही थे, जिनके वामभाग में आदिशक्ति श्रीसीताजी विराजमान थीं–

वाम भाग सोभति अनुकूला । आदिसक्ति छबिनिधि जगमूला।।
जासु अंस उपजहिं गुनखानी । अगनित लच्छि उमा ब्रह्मानी।।
भृकुटि बिलास जासु जग होई । राम बाम दिसि सीता सोई।।

(मा/1/148)

तद्नुसार भगवान ने उन्हें वरदान भी दिया कि –

इच्छामय नरवेष सँवारे । होइहउँ प्रगट निकेत तुम्हारें ।
अंसन्ह सहित देह धरि ताता । करिहउँ चरित भगत सुखदाता।
आदिसक्ति जेहि जग उपजाया । सोउ अवतरिहि मोरि यह माया।

(मा/1/152)

***

।। श्री रामः शरणं मम ।।

क्रमांक- 8 (आ) देव शक्ति मूलक शकार

शक्ति-स्वरूपा जनकराज-नन्दिनीजू न केवल परब्रह्म पुरूषोत्तम श्रीरामचन्द्र जी महाराज की स्वरूपा शक्ति हैं बल्कि ब्रह्मा, विष्णु, महेश की सुष्टि-पालन-संहार कारिणी शक्ति भी हैं। यही त्रिदेवों की शक्तियों को उत्पन्न करके त्रिदेवों को शक्ति प्रदान करती हैं। यह सब शक्ति कार्य श्रीराम के सान्निध्य मात्र से उन्हें सुख प्रदान करने के लिए करती हैं। श्रीप्रेमरामायण (ज्ञान/150-51) में श्रीस्वामिपाद कहते हैं:-

उत्पति थिति लय करहिं सब, अंड अनन्तन केर।
विधि हरि हर उपजावती, अमित लेहु हिय हेर।।
छन महँ विरचहुँ अण्ड अनन्ता। छन महँ सो संहार लहन्ता।।
रामहिं लीला सुखद दिखाऊँ। पालन सृजन हरण करि भाऊ।।
ब्रह्मा विष्णु महेशहिं धारउँ। पोषन करउँ सबन सुख सारउँ।।
उमा रमा शारद परधानी । अमित शक्ति उपजाय महानी।।
शक्ति देय जग कार्य कराऊँ । सो सब सेवहिं सुन्दर भाऊ।।

विनय वल्लरी (पद 149) में प्रेमावतार श्रीस्वामीजी गा उठते हैं:-

विधि हरि हर ठकुराइनि, जग जायिनि हे;
पालन बहुरि विनाश जय जय जनकसुते।

श्रीरामचरित मानस (बा0/मं0/5) में गोस्वामी जी श्रीस्वामिनीजू का मंगलानुशासन करते हुए कहते हैं:-

उद्भव स्थिति संहार कारिर्णीं, क्लेश हारिणीम्।
सर्वश्रेयस्करीं श्रीसीतां नतोऽहं रामवल्लभाम्।।

यह सब कार्य श्रीकिशोरीजू अपने स्वामी का रुख पाकर करती हैं। इस रहस्य का उद्घाटन महर्षि वाल्मीकि मुनि मानस (2/126) में करते हैं:-

श्रुति सेतु पालक राम तुम्ह जगदीश माया जानकी।
जे सृजति जगु पालति हरति रूख पाइ कृपानिधान की।।

ऋग्वेद (10/125/1,6) में वाक् (वागाम्भृणी) अपने स्वरूप का उद्घाटन करती हुई कहती हैं कि “ मैं रूद्र (रूद्रेभिः अर्थात् एकादश), वसु (वसुभिः अर्थात् अष्ट), आदित्य (आदित्यैः अर्थात द्वादश), विश्वदेव, वरूण, इन्द्र, अग्नि आदि देवताओं

के रूप में स्वयं विचरण करती हूँ और ब्रह्मद्वेषियों के संहारार्थ संहारकारी रूद्र के धनुष की प्रत्यंचा चढ़ाती हूँः-

अहं रूद्रेभिर्वसुभिश्चरामि अहमादित्यैरुत विश्वदेवैः।
अहं मित्रावरूणोभा विभर्म्यहभिद्राग्नी अहमश्विनोभा।।
अहं रूद्राय धनुरा तनोमि ब्रह्मद्विषे शरवे हन्तवा उ ।।

।। श्री रामः शरणं मम ।।

क्रमांक- 9 (5) जीव शक्ति मूलक शकार

श्री सुनयनानन्द-वर्द्धिनी श्रीकिशोरीजू जीवमात्र की इन्द्रियों में शक्ति प्रदान कर उनकी रक्षा करती हैं। वैदेही दर्शन (पृ0 12) में श्रीस्वामीजी कहते हैंः-

"इन्हीं वैदेही की प्रेरणा व शक्ति से श्रोत्र, चक्षु, वाक्, प्राण, मन और बुद्धि अपना-अपना कार्य करने में सक्षम होते हैं।"

श्रीकिशारीजू प्राणिमात्र के हृदय में बसने वाली शक्ति हैं, सबका पालन करने वाली हैं। वही भगवान् के प्रति प्रेम उत्पन्न कर जीवमात्र को आनन्द प्रदान करने वाली हैं। श्रीकिशोरीजू के प्राकट्य होने पर श्रीप्रेमरामायण (1/131/छंद/1-3) में देवादि समुदाय जो स्तुति करते हैं, उनके कुछ शब्द इस प्रकार हैंः-

जय जय अविनाशिनि, सब घट वासिनि, आदि शक्ति सुखकारी।
जय आनंदवर्धनि, प्रेम समृद्धनि, सब जग पालन हारी।।
दुख दोष नशावनि, पाप मिटावनि, करति अमित लय अण्डा।

जगज्जननी जानकी की कृपा से उनका साक्षात् दर्शन होने पर जड़-चेतनात्मक जगत सीयराममय प्रतीत होने लगता है। उत्तम विज्ञानमयी स्थिति प्राप्त होती है। जनकपुर के विवाह मण्डप में जब श्रीकिशोरीजू पधारती हैं तब उनका दर्शन करते ही वर-कन्या के दोनों समाजों के हृदय में ज्ञान का प्रकाशसूर्य उदित हो गया। सबको दिव्यदृष्टि प्राप्त हो गयी। परिणाम स्वरूप सभी निर्बीज समाधि में स्थित हो गये। नर हों अथवा नारी सभी लोगों ने सभी नर-नारियों में वर-दुल्हन के वेष में श्रीसीतारामजी का दर्शन किया। श्रीप्रेमरामायण (1/389-90) की पंक्तियॉं हैंः-

यहि विधि जनक लड़ैती सीता । आई मँडप प्रीति पुनीता।।
देखत सीतहिं युगल समाजा । भई विदेह यथा निमिराजा।।
ज्ञान प्रकाश सूर्य छवि छायो । हृदय पटल उगि आत्म लखायो।।

दिव्य दृष्टि अति भई सुहाई । भीतर बाहर एक लखाई।।
वर विज्ञानमर्या थिति छाये । रत समाधि निर्वीजहिं पाये।।
जहँ तहँ चितवहिं नारि नर, तहँ तहँ सिययुत राम।।
बनी बना वेषहिं बने, लाजत बहु रति काम।।
देखहिं नारि युगल छबि प्यारी । नर नारिन के देह मझारी।।
नरहु लखहिं नर नारिन माहीं । सीयराम छबि सुखद सोहाहीं।।
जड़ चेतन सब रामहिं रामा । देखे सुर नर मुनि सह बामा।।

श्रीसूक्त (9-10) में कहा गया है कि ''सुगन्धित पुष्प के समर्पण करने से प्राप्त करने योग्य, किसी से भी न दबने योग्य, धन-धान्य से सर्वदा पूर्ण कर गौ, अश्वादि पशुओं की समृद्धि देने वाली, समस्त प्राणियों की स्वामिनी तथा संसार-प्रसिद्ध लक्ष्मी को मैं अपने घर में सादर बुलाता हूँ। हे लक्ष्मी! मैं आपके प्रभाव से मानसिक इच्छा एवं संकल्प, वाणी की सत्यता, गौ आदि पशुओं के रूप (दुग्ध-दध्यादि) एवं अन्नों के रूप (अर्थात् भक्ष्य, भोज्य, चोब्य, लेह्य चतुर्विद्या भोज्य पदार्थों) को प्राप्त करूँ। संपत्ति और यश मुझमें आश्रय लें अर्थात् मैं लक्ष्मीवान् एवं कीर्तिमान् बनूँ।

गन्धद्वारां दुराधर्षां नित्यपुष्टां करीषिणीम्।
ईश्वरीं सर्वभूतानां तामिहोप ह्वये श्रियम्।।
मनसः काममाकूतिं वाचः सत्यमशीमहि।
पशूनांरूपमन्नस्य मयि श्रीः श्रयतां यशः।।

ऋग्वेद (10/125/3-5) वर्णित वाक्सूक्त के अनुसार श्रीजू ही जीवात्मा के रूप में अन्न खाती हैं, देखती हैं, श्वास-प्रश्वासादि क्रियाओं द्वारा प्राणित होती हैं और श्रवणादि क्रियायें करती हैं। श्रीजू जगदीश्वरी हैं। गो-हिरण्यादि पार्थिव और ज्ञान-विज्ञानादि अपार्थिव धनों (वसुओं) की संगम है अतः इनकी दात्री है। श्रीजू उस ज्ञान को प्रदान करने वाली हैं, जो समस्त यज्ञोपासनाओं का आदि है, जिससे 'अहम्' का स्वरूप-दर्शन होता है। वह जिसे चाहती हैं, उसे उन्नत् पद प्रदान करती हैं, (अध्यात्म जीवनोपयोगी) सुबुद्धि (सुमेधा) संपन्न करती हैं, आत्मदर्शी ऋषि बनाती हैं तथा ब्रह्मा का पद देती हैं। इतना ही नहीं, वह अपने उपासक-गणों की ओर से युद्ध करती हैं। वह द्युलोक से पृथ्वीलोक तक आविष्ट हैं:-

मया सो अन्नमत्ति यो विपश्यति यः प्राणिति य ई शृणोत्युक्तम्।
अहं राष्ट्री संगमनी वसूनां चिकितुषी प्रथमा यज्ञियानाम्।
यं कामये तं तमुग्रं कृणोमि तं ब्रह्माणं तमृषिं तं सुमेधाम्।।
अहं जनाय समदं कृणोम्यहं द्यावा पृथिवी आविवेश।।

क्रमांक- 10

(2)श्रीसीता मूलक शकार

श्रीसीतामूलक 'शकार' छवि, करुणा और ऐश्वर्य वैभवों से युक्त है:-

शकारार्थः सीता सुछवि करूणैश्वर्य विभवा

श्रीमद्वाल्मीकीय रामायण में (7/98/4) में प्रीतम प्रभु ने विरह-व्यथित हृदय से यह अनुभव किया कि श्रीसीता जी मूर्त्तिमती श्रीलक्ष्मी जी ही थीं-

सीता श्रीरिव रूपिणी

श्रीसूक्त (1-3) में श्रीजू की जो छवि, जीवमात्र के प्रति करूणा और राजकीय वैभव का त्रिवेणी संगम है, उसमें श्रीसीताजी सद्यः स्नाता रही हैं। श्रीकुल के उपासक अग्निदेव से उन श्रीजू का आवाहन करते हैं, जो सुवर्ण के समान पीतवर्णवाली, हरिणी की तरह चंचल नेत्र वाली, सुवर्ण मिश्रित रजत की माला धारण करने वाली, चाँदी के समान धवल बेला-जूही आदि पुष्पों की माला धारण करने वाली, चन्द्रमा सदृश प्रिय एवं आहलादकारी दर्शन देने वाली, अपने उपासकों को सुवर्ण, गौ, अश्व और पुत्र-पौत्रादि प्रदान करने वाली हैं:-

ॐ हिरण्यवर्णां हरिणीं सुवर्ण रजतस्रजाम।
चन्द्रां हिरण्मयीं लक्ष्मीं जातवेदो म आ वह।।
ॐ तां म आ व ह जातवेदो लक्ष्मीमानप गामिनीम्।
यस्यां हिरण्यं विन्देयं गामश्वं पुरूषानहम्।।

श्रीजू के भक्तगण अपनी आश्रयदात्री जननी को अपने-अपने घर में सर्वदा निवास करने के लिए बुलाते हैं, जो ऐसे रथ में आरूढ़ होकर आती हैं, जिसके आगे-पीछे घोड़े और उसके आगे हाथियों का निनाद होता चलता है। जिस निनाद को सुनकर देखने-सुनने वाले प्रफ्फुलित हो जाते हैं:-

अश्वपूर्वां रथमध्यां हस्तिनाद प्रमोदिनीम्।
श्रियं देवीमुप ह्वये श्रीर्मा देवी जुषताम्।।

श्रीकुल के उपासक उन श्रीजू का आश्रय ग्रहण करना चाहते हैं, जो चन्द्रमा के समान प्रकाशवाली, अप्राकृत कान्तिवाली अपनी कीर्ति से देदीप्यमान, स्वर्ग लोक में इन्द्रादि देवताओं से पूजित, अत्यन्त दानशील, कमल के मध्य रहने वाली, सभी की रक्षा करने वाली और आश्रयदात्री हैं।

चन्द्रां प्रभासां यशसा ज्वलतीं श्रियं लोके देवजुष्टामुदारम्।
तां पद्मनीमीं शरणं प्रपद्ये अलक्ष्मीर्मे नश्यतां त्वां वृणे।।

जगज्जननी श्री जानकी जी की शोभा अप्राकृत है। प्राकृत नारियों के लिए दी गयी उपमाएँ जूठी हो गई हैं-

सब उपमा कवि रहे जुठारी । केहि पटतरौं विदेह कुमारी।
(मानस/1/230)

श्रीकिशोरीजू छविरूपी गृह को प्रकाशित करने वाली, सुंदरता को भी सुन्दर बनाने वाली हैं-

सुंदरता कहुँ सुंदर करई । छविगृहँ दीपशिखा जनु बरई।।

श्रीकिशोरीजू की शोभा मर्यादापुरूषोत्तम दशरथनन्दन श्रीरामभद्र जू के मन को आकृष्ट ही नहीं बाँधनेवाली है-

देखि सीय शोभा सुखु पावा । हृदय सराहत बचनु न आवा।
जासु विलोकि अलौकिक सोभा । सहज पुनीत मोर मन छोभा।।
X X X X
करत बतकही अनुज सन मन सिय रूप लोभान।
मुख सरोज मकरंद छवि करइ मधुप इव पान।।
(मानस/1/231)

· प्रभु भी पूर्णकाम तब हुए जब उन्होंने विवाह मण्डप में छविरूपिणी ललनाओं के मध्य सुषमा की प्रतिमूर्ति किशोरी जी का दर्शन किया-

सोहति बनिता बृँद महुँ सहज सुहावनि सीय।
छवि ललना गन मध्य जनु सुषमा तिय कमनीय।।
आवत दीखि बरातिन्ह सीता । रूप रासि सब भाँति पुनीता।।
सबहिं मनहिं मन किए प्रनामा । देखि राम भए पूरन कामा।।
(मानस/1/231)

श्रीप्रेमरामायण (1/129-30) में श्रीमद् स्वामीजी श्रीजनकराज नन्दिनीजू के दिव्य प्राकट्य का अभूतपूर्व दर्शन प्रदान करने की अहैतुकी कृपा है, जिसमें छवि, ऐश्वर्य और करुणा का अद्भुत त्रिवेणी संगम है। राजा जनक स्वयं रत्न-जटित हल चला रहे हैं। एकाएक हल रुक जाता है। एक विवर से महान तेज प्रकाशित हो उठता है। उससे एक दिव्य सिंहासन ऊपर आता है, जिसके रत्नों से अनेक सूर्यों का प्रकाश फैल रहा है। उस सिंहासन पर भूमि देवी की गोद में जगज्जननी आदिशक्ति बैठी हैं। उनके

वस्त्राभूषण झलमल-झलमल झलक रहें हैं। उनके मस्तक पर चन्द्रिका, कानों में कुंडल, दोनों चरण-कमलों में नूपुर, कर-कमलों में कंकण, गले में हार सुशोभित हो रहे हैं। चारो ओर से अष्ट सखियाँ चमर, छत्र, इत्र, पानदान, व्यजनादि साजों से सेवा कर रही हैं। उस सिंहासन को शेष भगवान अपने मस्तक पर लिए प्रकट हुए। संपूर्ण ब्रह्माण्ड जय-जयकार ध्वनि से गूँज उठा। आकाश से झर-झर पुष्प और मालाओं की वर्षा होने लगी। आकाश से इत्र की वर्षा होने लगी। भूमि पर ढोल, वीणा, वेणु, मृदंग, नगाड़े, शंख, घड़ियाल बजने लगेः-

चलत चलत हल सकेउ एकायक । भयेउ विवर महि तेज महायक।।
दिव्य सिंहासन ऊपर आवा । जटित रत्न बहु सूर्य बनावा।।
भूमि देवि के अंकहिं माहीं । आदि शक्ति जगमातु सुसोहीं।।
बैठि सिंहासन बीच प्रकाशै । कोटि सूर्य जनु उगे अकाशै।।
बसन विभूषण झलमल झलकै । सिरन चन्द्रिका कुंडल अलकै।।
चरण कमल युग नूपुर सोहैं । कर कंकण हिय हार सुमाहैं।।
अष्ट सखी सेवा सरहिं, चमर छत्र छवि सोइ।
विजन पान इत्रादि वर, लिये कृपा को जोह।।
शेष लिये सिर शुभ्र सिंहासन । जगमग जगमग परम प्रकाशन।।
जय जय धुनि पूरी ब्रह्माण्डा । आनँद उमड़ि डुबायो अण्डा।।
पुष्प माल झर झर झरि वरषहिं । भूमि अकाशहिं ते मन करषहिं।।
गन्ध वृष्टि बहु गगनहिं तेरे । होति हर्षि पगि प्रीति घनेरे।।
दुन्दुभि स्वर सुर करहिं सुखारी । भूमि ढोल बाजादिक भारी।।
वीणा वेणु मृदंग नगारे । बाजहिं शंख घड़ी करतारे।।

जिस प्रकार त्रिवेणी संगम में गंगा और यमुना की धाराएँ प्रकट हैं लेकिन सरस्वती की धारा गुप्त है। संतों का अनुभव है कि किसी बड़भागी को सरस्वती की गुप्त धारा का दर्शन होता है। उसी प्रकार जानकी प्राकट्य के उपर्युक्त प्रसंग में छवि और ऐश्वर्य वैभवों का प्रकट दर्शन होता है लेकिन करुणा की गुप्त धारा में जिसका चित्त डूब जाता है, वह प्रेममय बन जाता है। करुणा की वह गुप्त धारा है सीताग्रज कुँअर का गुप्त प्रेम। कुँअर श्री लक्ष्मीनिधि जानकी के प्रकट होते ही मूर्च्छित होकर धराशायी हो जाते हैं। पिता विदेहराज के मुख से 'भ्रात' शब्द सुनते ही प्रेम विभोर हो जाती हैं जनकदुलारी जू और उन्हें देखने के लिए व्याकुल हो जाती हैं। जब विदेहराज जी ने संकेत किया कि आपका प्रथम दर्शन पाते ही भूमि पर पड़े हैं तब माता पृथ्वी

सहित श्रीकिशोरी जू उन्हें जगाती हैं। पृथ्वी माता तुरत अपनी गोद में एक ओर श्रीसियाजू को और दूसरी ओर कुँअर को सिंहासन पर बैठा लेती हैं। पुष्प की वर्षा होने लगती है, बाजे बजने लगते हैं:-

लखि निज सुवन कहेउ नरपाला । परेउ धरणि तन प्रेम विहाला।।
कृपा कोर तव प्रथम किशोरी । प्रगटत लखेउ सो भयो विभोरी।।
वचन सुनत मिथिलेश के, भूमि सहित द्रुत जाय ।
कुअँर जगायो परसि कर, वैभव रूप दिखाय।।
भूमि तुरत सिय अंक लै, कुअँरहिं लीन्हे गोद।
दिव्य सिंहासन भ्राजती, भरेउ हिये अति मोद।।
भ्रात भगिनि लै भूमि सुहाई । यथा सुनैना शोभ महाई।।
वरषहिं फूल नाग मुनि देवा । बाजत वाद्य गगन सिय धेवा।।

(प्रे/1/134-35)

श्रीप्रेमरामायण वर्णित श्रीसीताराम विवाह प्रसंग दिव्य है। उमा, रमा, शारदा, शची कपट नारि-रूप धारण कर श्री किशोरी जू का विवाह-शृंगार कर रही हैं। नख-शिख-शृंगार करके श्रीकिशोरी जू को विवाह-मण्डप ले जा रही हैं। कोमल सुन्दर मखमल के पांवड़े बिछे हैं। ब्राह्मण शान्ति पाठ कर रहे हैं। जानकी जी धीरे-धीरे अपने श्रीचरण आगे बढ़ा रही हैं। वे मानों छबि, शृंगार, रस और रूप की खान हैं:-

उमा रमा शारदा शची, कपट नारि शुभ रूप।
सियहिं संवारन सब लगीं, करि शृंगारअनूप।।
नख शिख सीतहिं सुभग सिंगारी । चलीं लिवाय मनोहर नारी।।
कोमल कलित पाँवडे परहीं । अरघ दीन्ह द्विज शान्तिहिं पढ़हीं।।
मन्द मन्द पग धरति जानकी । छवि-सिंगार-रस-रूप खान की।।
भूषित भूषण भल अंग देशा । चम चमात साड़ी वर वेषा।।
मौरी सुभग शीश महँ राजै । स्वर्ण तन्तु मणि खंचित सुभ्राजै।।
मौरि जटित मोतिन के गुच्छा । झूलत कुण्डल ढिगहिं अतुच्छा।।
सिय सोभा को कहै बखानी । अमित त्रिदेवी अँश समानी।।
बनितन बीच सोह अस सीता । नखत बीच जनु चन्द्र पुनीता।।
छबि सुख सुखमा अवधि सिय, नख द्युति उपजत भान।
सुन्दरतहिं सुन्दर करै, अमित अण्ड की प्रान।।

(प्रे0/1/387-88)

श्री किशोरीजू छवि, ऐश्वर्य, करुणा, और सुख की खान ही नहीं बल्कि गुण, रूप, धर्म, शील, विनय और संकोच की प्रतिमूर्ति भी हैं। विदेहराज, श्रीरामभद्र जू के करकमलों में अपनी प्राण प्रिय लाड़िली जू को समर्पित करते हुए श्रीप्रेमरामायण (1/394) में कहते हैं:-

बोले जनक सुनहु रघुनाथा । पूरण काम सदा सुख साथा।।
गुण आगरि प्राणन प्रिय बाला । रूप उजागरि धर्म विशाला।।
शील विनय संकोच स्वरूपा । सब प्रकार तुम्हरे अनुरूपा।।
सब विधि अहै अलंकृत कीन्हीं । ग्रहण करहु मैं आयसु दीन्हीं।।
अस कहि दम्पति हरषि उर, सीतहिं हाथ बढ़ाय।
रामहिं सौंपेउ मंत्र पढ़ि, तन मन गयो भुलाय।।

युगल सौन्दर्य-माधुर्य का अवलोकन करते हुए श्रीआचार्य प्रभु वैदेही दर्शन(पृ0 9) में कहते हैं-

"श्रीरामजी नित्य षोडश वर्षीय अवस्था से युक्त तथा श्रीवैदेहीजू नित्य द्वादशाब्दीय अवस्था से संयुक्त रहती हैं। दोनों अनन्तानन्द सौंदर्य, माधुर्य, सौकुमार्य, सौष्ठव, लावण्य, मनमोहकत्वादि काय-संपत्तियों से सदा संयुक्त रहते हैं, आपका सौन्दर्य-सार-विग्रह सदा नव-नवायमान दृष्ट चित्तापहारी, एकरस, परिकरों को रस के सिन्धु में निमग्न किये रहता है।"

पुनश्च, वैदेही दर्शन(पृ0 11) में अनुग्रह करते हैं:-

"वैदेही जी का सच्चिदानन्दमय विग्रह जो परव्योम में प्रतिष्ठित है, वह नराकार द्विभुज है, दिव्य है किन्तु परिणाम-हीन है, नित्य एकरस प्रतिष्ठित है। इनके सुन्दर सुगन्धित वपु के अंग-अंग एवं अनन्त सौशील्य, सौलभ्य, वात्सल्यादि अनन्तानन्त दिव्य गुण और रस रूपिणी, अनन्त लीलाओं का वैचित्र्य, वैशिष्ट्य तथा वैलक्षण्य, सबके सब अप्राकृत अर्थात् सच्चिदानन्दमय है।"

पुनश्च, वैदेही दर्शन (पृ0 16-17) में श्रीजू के आधिभौतिक स्वरूप का निरूपण करते हुए आचार्यश्री अनुग्रह करते हैं:- " वैदेही जी अनन्त कल्याण गुणगणार्णवा हैं। उनकीं इन्द्रियाँ बहिर्मुखी नहीं हैं। वे अपनी ऑखों से क्षर-अक्षर भाव को छोड़कर एक सच्चिदानन्दघन श्रीरामजी को ही देखती हैं। श्रीसीता जी के श्रोत्र, राम नाम एवं राम कथा को श्रवण करके ही शान्ति का समनुभव करते हैं। कारे-कारे केशों की त्रिवेणी सहज सौभाग्य-सीमासूचक सिन्दूर और चन्द्रिकादि अलंकारों से अलंकृत श्रीमन्मैथिलीजू का मस्तक श्रीराम जी को नमन करते रहने के स्वभाव वाला होने से शोभा का केन्द्र

साथ-साथ वाणी के पति के रूप में धनुषधारी श्रीराम का भी स्मरण किया है-

तदपि जथाश्रुत कहउँ बखानी । सुमिति गिरापति प्रभु धनु पानी।।
सारद दारुनारि सम स्वामी । रामु सूत्रधर अंतरजामी।।
जेहि पर कृपा करहिं जनु जानी । कवि उर अजिर नचावहिं बानी।

ब्रह्मवैवर्त्त पुराण (2/6/17) में लक्ष्मीं, सरस्वती और गंगा तीनों को विष्णु-भार्या कहा गया है-

लक्ष्मीः सरस्वती गंगा तिस्रो भार्या हरेरपि।

श्रीसूक्त (मंत्र 10) में अन्न-दुग्धादि प्रदात्री श्रीलक्ष्मी से वाणी की सत्यता प्रदान करने के लिए भी प्रार्थना की गयी है-

मनसः काम माकूतिं वाचः सत्यमशीमहि ।
प्रशूनां रूपमन्नस्य मयि श्रीः श्रयतां यशः।।

संक्षेप में, सीताशक्ति का क्रियात्मक रूप वाणी अथवा सरस्वती हैं, जिसे वाक्, गिरा आदि नामों से पुकारा जाता है। सीतोपनिषद् (उपनिषद् अंक, पृ0 658) में कहा गया है कि “ उन श्रीसीता जी की क्रियाशक्ति का रूप श्रीहरि के मुख से नाद के रूप में व्यक्त हुआ। उस नाद से बिन्दु प्रकट हुआ। बिन्दु से ॐकार का आविर्भाव हुआ। ॐकार से परे राम वैरवानस नाम का पर्वत है। उस पर्वत की कर्म एवं ज्ञानात्मिका अनेक शाखाएँ व्यक्त हुईं। उसी पर्वत पर वेदत्रयी-स्वरूप सर्वार्थ को प्रकट करने वाला आदिशास्त्र है। तात्पर्य यह कि श्रीराम वैरवानस पर्वत ही नित्य वेद-स्वरूप है और लोक में वह वेदों के रूप में व्यक्त होता है। उस आदिशास्त्र को ऋक्, यजुः और सामात्मक होने से त्रयी कहा जाता है।”

संक्षेप में वाक्-मूलक शकार शब्द ब्रह्ममयी सीताशक्ति का वाचक है। श्रीरामोत्तर तापनीयोपनिषद् में कहा गया है कि श्रीरामजी महाराज के सान्निध्य मात्र से जो संपूर्ण देहधारियों की उत्पत्ति, पालन और संहार करनेवाली हैं, वे जगदानन्ददायिनी विदेह नन्दिनी सीताजू ॐकार में नाद-विन्दु-स्वरूपा हैं। वे ही मूलप्रकृति के नाम से जानने योग्य हैं। प्रणव से अभिन्न होने के कारण ही उन्हें ब्रह्मवादी जन ‘प्रकृति’ कहते हैः-

सा सीता भवति ज्ञेया मूलप्रकृति संज्ञिका।
प्रणवत्वात् प्रकृतिरिति वदन्ति ब्रह्मवादिनः ।।

वैदेही दर्शन (पृ0 2-3) में श्रीस्वामी जी श्रीरामोत्तर तापनीयोपनिषद् के उक्त निरूपण का स्पष्टीकरण करते हुए कहते हैं कि “त्रिमात्रिक (अ+उ+म) ओम् की वाच्या

किन्तु उससे सर्वथा विलक्षण परब्रह्म के चतुर्थपाद स्वरूपा वैदेही का अनिर्वचनीय एवं अचिन्त्य वैभव है। अ+उ+म इन तीन मात्राओं से रहित ओम् का सच्चिदानन्दात्मक स्वयं सिद्ध स्वरूप है, जो परमात्मा के चतुर्थपाद अर्थात् विश्व, तेजस, प्राज्ञ इन तीन पादों के कारणभूत चतुर्थपाद परमात्मा के समान है। इस त्रैमात्रा-विहीन सच्चिदानन्दात्मक ॐ के सत्ता की सुरक्षा, स्वरूपा शक्ति से ही संभव है अर्थात् वैदेहीं ही ओम् के ओमत्व का संरक्षण करनेवाली हैं। सीताजी को ॐ-रूपिणी कार्य-कारण की एकता का विचार करके कहा गया है।''

श्रीप्रेमरामायण (1/1) में श्रीस्वामिपाद श्रीराममंत्र के बीज-गर्भित तत्व, ज्ञान, साथ-साथ ब्रह्मज्ञान प्रकाशित करनेवाली के रूप में भगवती सरस्वती (वाक्) का प्रथम मंगलाचरण करते हैं:-

रामेति सर्व बीजस्य, तत्वज्ञान प्रकाशिनीम्।
देवीं सरस्वतीं वन्दे, मंगलानां च रूपिणीम्।।

ब्रह्मविद्या-स्वरूपिणी सरस्वती देवी भी श्रीसीताराम विवाह के अवसर पर कोहवर में लहकौरी सेवा में श्रीस्वामिनीजू के पार्श्व में स्थित हैं-

लहकौरि गौरी सिखाव रामहिं, सीय सन सारद कहैं।

पद्मपुराण, पाताल खण्ड में ब्रह्मविद्या स्वयं तप कर रही हैं। उनका तप करते देखकर ऋषि पूछते हैं कि आप कौन हैं ? आप क्यों इतना कठिन तप कर रही हैं ? ब्रह्मविद्या ने कहा, '' मैं ब्रह्मविद्या हूँ। ऋषियों ने पूछा, 'आपका कार्य ?' ब्रह्मविद्या ने कहा कि 'सारे जगत को अज्ञान से मुक्त करके ब्रह्म में प्रतिष्ठित कर देना- यह मेरा कार्य है। सारे जगत के अज्ञान तिमिर को सर्वदा के लिए हर लेना और ज्ञान को प्रकाशित करना, यह मेरा स्वाभाविक कार्य है। ऋषियों ने पूछा, तो फिर आप तपस्या क्यों कर रहीं है ? वे यह तो नहीं कह सकीं कि ''सीता भाव की प्राप्ति के लिए। उनको यह कह सकने की हिम्मत न पड़ी। उन्होंने कहा कि सखी(गोपी) भाव की प्राप्ति के लिए। प्रिया-प्रियतम के सुख की सामग्री एकत्र कर देना, इनके जीवन का स्वभाव है।''

(श्रीहनुमान प्रसाद पोद्दार, श्रीराधामाधव चिन्तन, पृ0 53)

***

।। श्री रामः शरणं मम ।।

क्रमांक- 12

(4) व्युत्पत्ति- मूलक 'श्री' शब्द

आचार्य प्रभु श्रीस्वामिपाद वैदेही दर्शन (पृ0 22) में अनुग्रह करते हैं कि "श्रीप्रचेता-पुत्र बाल्मीकि जी महाराज, जो ऋषि प्रवर हैं, वे कहते हैं कि श्री ब्रह्माजी से सम्मानित एवं सम्मति प्राप्त सर्वथा सत्य से संश्लिष्ट वाल्मीकि रामायण में मैने सर्वथा केवल श्रीसीताजी का महत् चरित्र लिखा है, अस्तु वैदेही के वैभव का आंशिक दर्शन भी वाल्मीकि महाकाव्य के रूप में दृष्टिगोचर हो रहा है। वत्स ! श्रीजानकीजी के दिव्य गुणों का बार-बार स्मरण करना ही श्रीरामजी के दिव्य दर्शन तथा कैंकर्य प्राप्त करने का हेतु है। जीवों की आर्त वाणी एवं सम्पुटाञ्जलि अपने श्रवण और नेत्रों का विषय बनते ही श्रीवैदेहीजी देहभान को भुलाकर द्रवीभूत हो जाती हैं तथा कृपाा परवश हो श्रीरामजी से आर्तो को अपना आश्रयण प्रदान करने के लिए प्रार्थना करती हैं। इसलिए 'श्रूयतेति श्रीं', 'श्रावयतीति श्री', 'श्रयतेति श्री', 'श्रीयतेति श्री' इत्यादि उन्नीस व्युत्पत्तियों के अर्थ को सदा एकरस धारण करने के कारण आपका एक नाम 'श्री' भी है।"

उपदेशामृत (पृ0 83) में श्रीस्वामीजी का सूत्र है "श्री" शब्द की श्रयते और श्रीयते व्युत्पत्तियों के अनुसार श्रीजी आश्रयण करती हैं और आश्रयण की जाती है अर्थात् जीवों का कल्याण करने के लिए भगवत् आश्रयण आपको नित्यापेक्षित है तथा जीवों को नित्य अपने चरणों में आश्राय देना भी जीवों के कल्याण के लिए ही आपको सहजापेक्षित है।"

प्रपति दर्शन (सूत्र 17, पृ0 14) में श्री स्वामीजी अहिर्बुधन्य संहिता का निम्नलिखित श्लोक प्रस्तुत करते हुए-

शृणाति निखिलान्दोषान् शृणाति च गुणैर्जगत।
श्रीयते चाखिलैर्नित्यै श्रयते च परं पदम्।।

यह सूत्र प्रदान करते हैं कि "उपदेशेन उभयोः वशीकतृं समर्था" अर्थात् श्रीजानकीजू उपदेश के द्वारा ईश्वर और जीव इन दोनों को वश में करने के लिए समर्थ हैं। इसकी व्याख्या स्वयं करते हुए अनुग्रह करते हैं कि श्रीसीताजू संश्लेष दशा में (श्रीरामजी के सामीप्य दशा में) श्रीरामजी से दयार्द्र होकर सादर सप्रेम प्रेरणात्मक प्रार्थना करती हैं कि ये सब जीव आपके हैं और आपकी ही माया के वशीभूत होकर आपसे

विमुख हो गये हैं अतः त्रिताप की अग्नि में अहर्निश जल रहे हैं अतएव इनकी रक्षा करें। यदि आप कहें कि ये जीव प्रार्थना-पूर्वक एक बार भी नहीं कहते कि ''मैं आपका हूँ'' - संबंध विच्छेद किये हुए हैं, तो इनकी रक्षा कैसे हो सकेगी ? अस्तु, आप श्रवण करें। यदि नन्हा शिशु जो अज्ञान की साकार मूर्ति है, ''मैं आपका पुत्र हूँ'' न कहे तो क्या वात्सल्य-मूर्ति माता-पिता, उस पुत्र का पालन व संरक्षण नहीं करते ? यदि करते हैं तो आपश्री में अनन्त पिता-माता का स्नेह निहित होने से जीवों की रक्षा अवश्य होनी चाहिए। यदि रक्षा न हुई जीवों की-उनके अघ दर्शन से तो आपश्री के वात्सल्य, सौशील्य, सौलभ्यादि दिव्य कल्याण-गुण, महारण्य के पुष्पों की भांति व्यर्थ हो जाएंगे, इत्यादि प्रकारों से श्रीरामजी से सनम्र उपदेश देकर उनके सर्वलोक शारण्य नाम की महिमा सुरक्षित रखती हैं। इस विषय में जयन्त की गाथा स्मरणीय है।''

श्रीप्रेमरामायण (ज्ञान/152) में अपने प्यारे भैया की आर्त्त जिज्ञासा से प्रेरित होकर अपनी कृपा शक्ति का परिचय जो देती हैं, वह ''श्रावयति इति श्री'' व्युत्पत्ति की व्याख्या ही है:-

परम कृपामय विग्रह मोरा । अतिहि सुकोमल सुख रस बोरा।।
जीव ताप मोहिं ते सत ताता । अल्प मात्र हिय सहा न जाता।।
जीव लागि निशिदिन प्रभु पाहीं । सुधिहिं कराऊँ तेहि हित काहीं।।
करि वर विनय स्वबस कर रामहिं । निज गुण सो नित आठहु यामहिं।।
जीव काहिं सुख सिन्धु समोऊँ । जेहि जग चाह तनिक नहिं होऊ।।
जे जग चहहिं तिनहिं जग देऊँ । मुक्ति चहैं तुरतहिं भव खेऊँ।।
मोरे हिय महँ बसत नित, अम्ब अनन्तन प्यार।
सन्मुख करि रघुबीर के, करति जीव उद्धार।।

पं0 श्रीकान्त शरण (मानस पीयूष, पृ0 24) श्रीसीतामंत्र के प्रथमाक्षर की व्याख्या करते हुए कहते हैं कि ''श्री शब्द'' 'शृ विस्तारे', 'श्रण दाने गतौ च ', 'शृ हिंसायाम्', 'श्रु श्रवणे' और 'श्रिञ्' सेवायाम् धातुओं से निष्पन्न होकर क्रम से सृष्टि-विस्तार-रूप उत्पत्ति, स्थिति, संहारकारिणी, श्रीरामजी को जीवों की प्रार्थना सुनाकर रक्षा करने से क्लेशहारिणी और चराचर मात्र से सेवित होकर उनका कल्याण करने से सर्वश्रेयस्करी ये पाँच अर्थ देता है। 'श्री' का अर्थ शोभा भी है। अपनी शोभा से श्रीरामजी को वश करने से उनकी वल्लभा हैं। अतः 'रामवल्लभा' श्री का छठा अर्थ है।''

***

।। श्री रामः शरणं मम ।।

क्रमांक- 13 (2) रकारार्थ- निरूपण

श्रीसीतामंत्र के बीज 'श्री ँ' में जो रकार है, वह श्रीराम-वाचक है- रकारो रामं उच्यते। यह रकार इस बीज में निम्नलिखित भावों से विचाारणीय और मननीय है:-

(1)व्युपत्ति परक भाव (2) शक्ति-शक्तिमान भाव (3)अपार्थक्य भाव और (4) जानकी देह भूषाय भाव।

क्रमांक- 14 (1) व्युपत्ति परक भाव

श्रीरामोपूर्वतापनीयोपनिषद् (उपपिषद् अंक, पृ0 531) में राम नाम की व्युत्पत्ति परक अर्थ करते हुए कहा गया है:-

(क) जो महीतल पर स्थित होकर भक्तजनों का संपूर्ण मनोरथ पूर्ण करते और राजा के रूप में सुशोभित होते हैं वे राम हैं- राति राजते वर महीस्थितः सन् इति रामः।

(ख) राक्षस जिनके द्वारा मरण को प्राप्त होते हैं, वे राम हैं।

(ग) वे सबके मन को रमाने वाले अभिराम होने से राम हैं।

(घ) जैसे राहु चन्द्रमा को हतप्रभ कर देता है, उसी प्रकार जो राक्षसों को मनुष्य रूप से प्रभावहीन (निष्प्रभ) कर देते हैं, वे राम हैं।

(ङ) राज्य पाने के अधिकारी महीपालों को अपने आदर्श चरित्र के द्वारा धर्ममार्ग का उपदेश देते हैं, वे राम हैं (रामो विग्रहवान् धर्मः)।

(च) जो ध्यान करने पर वैराग्य देते हैं और अपने विग्रह की पूजा करने पर ऐश्वर्य प्रदान करते हैं, वे राम हैं।

(छ) यथार्थ बात तो यह है कि उस अनन्त, नित्यानन्द स्वरूप, चिन्मय ब्रह्म में योगीजन रमण करते हैं, इसलिए वह परब्रह्म परमात्मा ही 'राम' पद के द्वारा प्रतिपादित होता है-

रमन्ते योगिनोऽनन्ते सत्यानन्दे चिदात्मनि।
तेन राम पदेनासौ परब्रह्माभिधीयते।।

पुनश्च, वहीं कहा गया है कि जैसे प्राकृत वट का महान वृक्ष वट के छोटे से बीज में स्थित रहता है, उसी प्रकार यह चराचर जगत रामबीज (राम्) में स्थित है। ब्रह्मा, विष्णु, महेश ये तीन मूर्तियां 'राम' के रकार पर आरूढ़ हैं तथा उत्पत्ति, पालन एवं संहार की त्रिविध शक्तियां अथवा बिन्दु, नाद और बीज से प्रकट होने वाली रौद्री, ज्येष्ठा एवं वामा, ये त्रिविध शक्तियां भी वहीं राम के रकार पर स्थित हैं:-

यथैव वटबीजस्थैव प्राकृतश्च महाद्रुमः।
तथैव रामबीजस्थं जगदेतत् चराचरम्।।
रेफारूढ़ा मूर्त्तयः स्युः शक्तयः तिस्र एव चेति
रौद्री बिन्दो ततो नादात् ज्येष्ठा बीजात् अजायत।
वामा ताम्यः समुत्पन्ना रूद्र ब्रह्म रमाधिपः।।

ब्रह्मयामल के रकारादि सहस्रनाम (श्लोक 86) में कहा गया है कि-

रकाराज्जायते ब्रह्मा रकाराज्जायते हरिः।
रकाराज्जायते शंभू रकारात् सर्व शक्तयः।।

स्वयं श्रीस्वामी रामानन्दाचार्य भगवान् राम नाम के रकार को दशरथ-नन्दन, परम ऐश्वर्य के सागर सगुण राम का वाचक कहते हैं-

रकार्थो रामः सगुण परमैश्वर्य जलधिः

विसर्ग-परक रम् धातु का अर्थ है, जो चराचर विश्व का उत्पादन करे, वह रकार है-
रमयति चराचरं जगत विश्वं उत्पादयति इति रः। रमु क्रीड़ायां धातु से रकार का अर्थ है, जो अपनी दिव्य शक्ति से चराचर विश्व को रमावे अर्थात पालन करे, वह रकार है- रमयति विश्वं चराचरं पालयति इति रः। रीङ् क्षये धातु से रकार का अर्थ है, जो प्रलयान्त में समस्त ब्रह्माण्डों को अपने विराट् उदर में लीन कर ले, उसे रकार कहते हैं:-

रीयते प्रलयान्ते विश्वं क्षीयते इति रः।

इस प्रकार समस्त ब्रह्माण्डों की उत्पत्ति, पालन और संहार करनेवाला राम का रकार है।

इसी बात को श्रीस्वामी जी प्रेमरामायण (25) में इस प्रकार कहते हैं:-

बन्दहुँ राम नाम रघुराई । सहित नाम सीता सुखदाई।।
विधि हरि हर निज शक्ति समेता । प्रकट रकारहिं ते श्रुति वेता।।
पूर्ण ब्रह्म की यावत शक्ती । राम नाम थापी करि युक्ती।।

विनय वल्लरी (पद 56) में श्रीस्वामिपाद कहते हैं-

जय जय त्रिदेव परम करुण कृपा कारिणी।
ब्रह्मप्रिया विष्णुप्रिया शंभुप्रिया पारिणी।।
राम के रकार ते प्रगट भई सिया अंश सर्व श्रुति वरणई।
राम सियाराम जपत रसी रसहिं धारिणी।।

पुनः विनय वल्लरी (170) में उनके वचन हैं- राम नामैव परंब्रह्म परं भृति, साधन साध्य योगी वर्यगम्या।

महर्षि वाल्मीकि ने 'रामो रमयतां वरः' कहा।

हारीत स्मृति (चतुर्थ अध्याय) में कहा गया है कि श्रीजी के रमण का सामर्थ्य तथा सौन्दर्य-गुण सागर होने से श्रीराम, यह प्रसिद्ध नाम पड़ा। सबको नित्य आनन्द देते हैं, इसलिए उनको 'राम' कहा जाता हैः-

श्रियो रमण सामर्थ्यात् सौन्दर्य गुण सागरात्।
श्रीराम इति नामेदं तस्य विष्णोः प्रकीर्तितम्।।
रमणात् नित्य युक्तत्वात् राम इत्यभिधीयते।।

(मा0पी0, पृ0 296 पर उद्धृत)

पाँचों प्रकार के जीवों तथा चेतन-जड़ सबको नित्य वैभव प्रदान करके अपने में रमाने के कारण राम हैं-

पंचधानित्यमुक्ताः श्री विष्वक्सेनादि चेतना चेतन
मात्रं दिव्य वैभव दातृत्वेन रमयति इति रामः।

प्राणिमात्र के हृदय में अन्तर्यामी रूप से रमण करने के कारण राम कहे जाते हैं-

अन्तर्यामित्वेन रमयति सः रामः

गोस्वामी जी की वाणी है-

राम ब्रह्म चिन्मय अविनासी । सर्व रहित सब उर पुर वासी।।

(मा0/1/120)

***

।। श्री रामः शरणं मम ।।

क्रमांक- 15

(2) शक्ति शक्तिमान भाव

'श्रीँ' बीज में 'श' अर्थात् सीता और 'र्' अर्थात् राम, शक्ति शक्तिमान भाव से स्थित हैं।

शक्ति शक्तिमान भाव आगमशास्त्र का एक प्रसिद्ध सिद्धान्त है। संसार में सत्-असत् रूप में जो कुछ भी वर्तमान है, उसकी जो शक्ति है, वह वही है-

यत् किंचित् क्वचिद् वस्तु सद् सद्वाखिलात्मके।
तस्य सर्वस्य या शक्तिः सा त्वं किं स्तूयसे मया।

(मार्कण्डेय पुराण/78/63)

शक्तिहीन पुरूष को लोग दुर्बल कहते हैं। उसे रूद्रहीन, या विष्णुहीन नहीं कहते अपितु शक्तिहीन ही कहते हैं-

शक्तिहीनं नरं ब्रूते लोकश्चेवातिदुर्वलम्।
रूद्रहीनं विष्णुहीनं न वदन्ति जनाः किला।।
शक्तिहीनं यथा सर्वे प्रवदंति नराधमम्।

(देवीभागवत/3/6/18)

वही शक्ति जब ब्रह्मा से संयुक्त होती है, तभी वे सृष्टि करने में समर्थ होते हैं। इसी प्रकार हरि, शिव, इन्द्र, अग्नि, सूर्य, वरूण आदि की कर्तृशक्ति और रूद्र की नाश शक्ति वही है-

विष्णोः पालन शक्तिः सा कर्तृशक्ति पितुर्मम।
रूद्रस्य नाश शक्तिः सा त्वन्य शक्तिः पराशिव।

(देवीभागवत/3/30/30)

शिव पुराण (वाय0सं0/उ0ख0/अ04/श्लोक 4,10) के अनुसार महादेवी साक्षात् शक्ति हैं और महादेव शक्तिमान। जैसे चन्द्रिका के बिना चन्द्रमा सुशोभित नहीं होते, उसी प्रकार शिव के विद्यमान रहने पर भी शक्ति के बिना वे सुशोभित नहीं होते। जैसे सूर्य कभी प्रभा के बिना नहीं रहता और प्रभा भी सूर्य के बिना नहीं रहती, निरन्तर सूर्य के आश्रय में ही रहती है, उसी प्रकार शक्ति और शक्तिमान को सदा एक दूसरे की अपेक्षा होती है-

शक्तिः साक्षात् महादेवी महादेवश्च शक्तिमान्।
चन्द्रो न खलु भात्येष यथा चन्द्रिका बिना।
न भाति विद्यमानोऽपि तथा शक्त्या बिना शिवः।।
प्रभया हि बिना यावद् भानुरेष न विद्यते।
प्रभा च भानुना तेन सुतरां न तदुपाश्रया।
एवं परस्परापेक्षा शक्तिशक्तिमतोः स्थिता।
न शिवेन बिना शक्तिः न शक्त्या च बिना शिवः।।

इस शक्ति सिद्धान्त के अनुसार श्रीजनक-लाडली जू शक्ति हैं और श्रीदशरथ नन्दन जू शक्तिमान हैं। मानस में मुनि-देवता और वेद सभी शक्ति संयुक्त श्रीराम की स्तुति करते हैं-

मुनि - भजे सशक्ति सानुजं (मा/3/4/छंद)
देवता - श्रीसहित दिनकर वंश भूषण काम वहु छवि सोहई। (मा/7/12/छंद)
वंदी रूप वेद - जय प्रनतपाल दयाल प्रभु संजुक्त शक्ति नमामहे। (मा/7/13/छंद)

श्री बाल्मीकि मुनि के शब्दों में-

श्रुति सेतु पालक राम तुम्ह जगदीश माया जानकी
जो सृजति जगु पालति हरति रूख पाइ कृपानिधान की।
(मा/2/126/छंद)

गोस्वामी जी श्रीराम और श्रीलक्ष्मण के बीच में श्रीजानकी को वन पथ में देखकर कहते हैं-

आगे रामु लखनु बने पाछे । तापस वेष विराजत काछें।
उभय बीच सिय सोहति कैसे। ब्रह्म जीव बिच माया जैसे।
(मा/2/123/1-2)

जगज्जननी जानकी जू, प्रभु से नित्य संयोग का संकेत करती हैं-

प्रभु करुनामय परम विवेकी । तनु तजि रहति छाँह किमि छेंकी।।
प्रभा जाई कहँ भानु विहाई । कहँ चन्द्रिका चंदु तजि जाई।।
(मा/2/97/5-6)

प्रिया-प्रीतम का जो वियोग दृष्टिगोचर हुआ, वह लीला मात्र था, उनका नित्य संयोग बना रहा। इसका दर्शन प्रभु-कृपा से सती जी को हुआ-

सती दीख कौतुक मग जाता । आगें रामु सहित श्री भ्राता।
फिरि चितवा पाछें प्रभु देखा । सहित बंधु सिय सुंदर वेषा।।
अवलोके रघुपति बहु तेरे । सीता सहित न वेष घनेरे।।

(मा/1/54-55)

इस शक्ति सिद्धान्त का मर्म समझाते हुए श्रीस्वामीजी श्रीप्रेमरामायण (24क-ग) में युगल श्रीसीताराम जी के नित्य संबंध का निरूपण करते हैं-

राम पृथक सीता नहीं, सीता पृथक न राम।
यथा अग्नि अस उष्णता, एकहिं तत्व ललाम।।
शक्ति बिना ठहरत नहीं, शक्तिमान कछु भाय।
शक्तिमान बिनु शक्ति की, स्थिति नाहिं दिखाय।।
रामहिं सीता जानि जिय, सीतहिं राम सुजान।
भाव सहित सियराम रटि, पाइअ प्रेम प्रमान।

इतना ही नहीं, हर्षण सतसई (नाम परत्व/114) में श्रीस्वामी जी कहते हैं कि राम नाम सीता नाम है और सीता नाम, राम नाम। दोनों कभी अलग उसी प्रकार नहीं है जैसे सूर्य और उसका प्रकाश-

राम नाम सीता अहै, सीता नामहिं राम।
हर्षण कबहुँक अलग नहिं, जिमि सूरज अरू घाम।।

इस प्रकार, आलोच्य श्री ँ बीज में 'र्' के आधार पर 'श्' स्थित है। 'र्' आधार है तो 'श्' आधेय। जिस प्रकार 'राम' नाम में र् और आ रूपों में दोनों स्थित हैं, उसी प्रकार यहां 'श्' और 'र्' रूपों में श्रीसीताराम जी स्थित हैं।

***

।। श्री रामः शरणं मम ।।

क्रमांक- 16

(3) अपार्थक्य भाव

शक्ति और शक्तिमान् के प्रति तत्व से, मंत्र से, गुण से और रूप से जिसकी भावना भिन्न-भिन्न नहीं है अर्थात् अभिन्न है, वही श्रेष्ठ भावुक है-

तत्वतो मंत्रतो वापि रूपतो गुणतोऽपि वा।

न पृथक् भावना यस्य स ज्ञेयो भावुकोत्तमः।।(मा0पी0,पृ0 288 पर उद्धृत)

वृहद् विष्णु पुराण (मा0पी0, पृ0 289) में कहा गया है कि श्री सुनयनानन्द वर्द्धिनी जू और कौशल्यानन्द वर्द्धन जू दोनों नित्य हैं। वे दो रूपों में दृष्टिगोचर होते हुए भी नित्यरूप से एक हैं, अपृथक् हैं। इसका श्रेष्ठ प्रमाण यही है कि श्रीराममंत्र में श्रीसीताजी स्थित हैं और श्रीसीतामंत्र में श्रीरघुनाथ जी स्थित हैं। इतना ही नहीं, राम शब्द का अर्थ सीता नाम है और सीता शब्द का अर्थ राम है-

द्वौ च नित्यं द्विधा रूपं तत्वतो नित्यमेकता ।
राममंत्रे स्थिता सीता सीतामंत्रे रघूत्तमः।।
यद्‌वा शब्दात्मको रामों सीता शब्दार्थ रूपिणी।
यद्‌वा वाणी भवेत् सीता रामः शब्दार्थ रूपवान्।।

प्रस्थान त्रयी व्याख्याकार श्रीमद् रामहर्षणदास जी महाराज वेदान्त दर्शन (पृ0 233) में ब्रह्मसूत्र (3/2/27) " उभय व्यपदेशात्तु अहि कुण्डलवत् " की व्याख्या करते हुए अनुग्रह करते हैं कि "परब्रह्म परमेश्वर को कारण-कार्य के रूप में श्रुतियों के द्वारा वर्णन करने से प्रकृति को परम पुरूष परमात्मा से अभिन्न और भिन्न दोनों प्रकार के कथनों को, सर्प के कुण्डलाकारत्व दृष्टान्त से सिद्धान्त को सिद्ध कर लेना चाहिए। जैसे सर्प कभी शरीर को संकुचित कर कुण्डलाकार हो जाता है और कभी अपनी सहज साधारण अवस्था में लंबाकार रहता है। परन्तु दोनों अवस्थाओं में है वह एक सर्प ही। साधारण अवस्था उसकी कारण भाव की प्रकाशिका है और कुण्डलाकार अवस्था कार्य भाव की। साधारण अवस्था में उसके कुण्डलाकार होने की शक्ति अप्रकट रूप में रहती है और कुण्डलाकार अवस्था में उसकी कुण्डलाकार बन जाने की शक्ति प्रकट हो जाती है। विचार करने पर यह निश्चय हो जाता है कि अप्रकट और प्रकट दोनों अवस्थाओं में सर्प की शक्ति, सर्प के स्वरूप के साथ थी। इसलिए सर्प की शक्ति

सर्प से अभिन्न है। इसी प्रकार परब्रह्म परमात्मा जब एक ओर कारण भाव में स्थित रहता है तब परा और अपरा नामक उसकी शक्तियां उसके स्वरूप में विद्यमान रहते हुए भी अप्रकट रहती हैं और जबवह कार्य भाव(जगत भाव) को प्राप्त होता है तब उसकी परा और अपरा दोनों शक्तियों का भिन्न नाम-रूपात्मक प्राकट्य रूप सबके ज्ञान का विषय बनता है। वास्तव में दानों अवस्थाओं में सर्प की भॉति एक ही परब्रह्म यथावत् रहता है तथा उसकी शक्ति भी उसके स्वरूप के साथ ही रहती है,उससे भिन्न कभी होती ही नहीं। शक्तिमान का साथ छोड़कर शक्ति का पृथक् होना असंभव है।''

वैदेही दर्शन(पृ0 19) में श्रीस्वामी जी अपार्थक्य भाव का दिग्दर्शन कराते हुए अनुग्रह करते हैं '' श्रीरामजी यदि चैतन्यघन हैं तो श्रीसीताजी चिद्शक्ति हैं, अर्थात् चिद्शक्ति के बिना चैतन्यघन की सिद्धि अदृश्य के उदर में ही रहेगी। यदि श्रीरामजी रस हैं तो श्रीसीताजी-नीर है। विचारणीय वार्ता यह है कि बिना जल के रस की निष्पत्ति असंभव है। यदि श्रीरामजी घृत हैं तो श्रीसीताजी क्षीर हैं एवं यदि श्रीरामजी अग्नि हैं तो श्रीसीताजी अग्नि की उष्मा हैं। श्रीरामजी यदि सूर्य हैं तो श्रीसीता जी सूर्य की प्रभा हैं। श्रीरामजी यदि वायु हैं तो श्रीसीताजी स्पन्दन। श्रीरामजी यदि पुष्प हैं तो श्रीसीताजी सुमन-सुगन्ध हैं।

श्रीराम और श्रीसीता अभिन्नाकार में ही भिन्न भासते हैं। पुरूष भाग जब स्वयं तिरोहित होकर स्वेच्छानुसार प्रकृति नटी से नर्तन क्रिया कराकर नृत्य कला के आनन्द का अनुभव करता है तब अनन्तानन्त ब्रह्माण्डों में जागतिक लीला का विकास होता है और जब प्रकृति भाग लुप्त होता है अर्थात् प्रकृति शक्ति का कार्य, स्वरूपा शक्ति सीता की इच्छानुसार विराम दशा को प्राप्त होता है तब एक पुरूष भाग प्रकट होता है अर्थात् एक अद्वय तत्व परब्रह्म परमात्मा पुरूषोत्तम भगवान श्रीराम और स्वरूपा शक्ति सीता अभिन्नाकार में एक रहते हैं''

श्रीप्रेमरामायण (ज्ञान/127) में प्रीतम प्रभु स्वयं युगल तत्व की अभिन्नता का प्रतिपादन करते हैं:-

जो मैं सो सीतहिं सत जानो । जो सीता सो मोहिं प्रमानो।।
तनिक भेद नहिं दूनहु माहीं । सब प्रकार दोउ एकहिं आहीं।।
यथा अग्नि अरू तासु उष्णता । पवन तथा तेहिं स्पंदनता।।
जिमि जल अरू शीतलता टेकी । एकहिं कहैं त्रिसत्य विवेकी।।
तैसहिं कहन मात्र हम दोई । वास्तव एकहिं सब विधि जोई।।
चणक द्विदल सहजहिं जस प्यारे । तथा ब्रह्म युग रूप सम्हारे।।

लीला करै सुआनँद दानी । सुनि लखि भक्त महासुख सानी।।
प्रेमपात्र जे मोर कुमारा । ते सेवहिं युगरूप सम्हारा।।

प्रपत्ति दर्शन (सूत्र 71-72) में श्रीसीतारामजी की अपृथकता का निरूपण प्रपत्ति के क्षेत्र में करते हुए अनुग्रह करते हैं कि श्रीजी भगवान से एक क्षण के लिए भी पृथक् नहीं होतीं- ''नार्ध क्षणमपि पृथक् भूता भवति।'' इस सूत्र की व्याख्या स्वयं करते हुएं श्रीस्वामीजी कहते हैं कि श्रीसीताजी अर्ध क्षण भी श्रीराम जी से पृथक् उसी प्रकार नहीं होतीं, जैसे अग्नि से उष्मा, चन्द्र से चन्द्रिका, प्रभाकर से प्रभा, दूध से उसकी मधुरता, मिश्री से मिठास और पवन से स्पन्दन-शीलता। श्रीजानकीजी ने स्वयं कहा है, ''अनन्या राघवेणाहं भास्करेण यथा प्रभा''। श्रीरामजी ने भी कहा है, ''अनन्या मया सीता भास्करेण प्रभा यथा''। शक्ति का शक्तिमान से पृथक होना कभी बन ही नहीं सकता। अतः चेतन जब शरण लेना चाहे श्रीरामजी की, श्रीसीताजी विद्यमान मिलेंगी पुरुषकार कार्य करने के लिए। सीता शक्ति से संप्रोत श्रीरामजी प्रपत्ति पथ की सिद्धि के लिए ही है- '' सीताविशिष्टो रामः प्रपत्त्यर्थाय'' (प्रपत्ति द0/सूत्र 72)। अतएव अकेले श्रीरामजी की शरणागति एवं कैंकर्यानुवृत्ति न करके, श्रीसीताजी सहित सीतारमणजी के चरणों की शरण में जाना चेतन के स्वरूपानुकूल है। द्वय मंत्र के अर्थानुसंधान से उक्त वार्ता स्वयं सिद्ध है।'' श्रीरामस्तवराज का प्रमाण इस प्रसंग में आचार्य प्रभु प्रस्तुत करते हैं-

सूर्य मण्डल मध्यस्थं रामं सीता समन्वितम्।
नमामि पुण्डरीकाक्षममेयं गुरु तत्परम्।।

***

।। श्री रामः शरणं मम ।।

क्रमांक- 17

(4) श्रीजानकी देह भूषाय भाव

श्रीरामपूर्व तापनीयोपनिषद (चतुर्थ खण्ड, श्लोक 2-5) में देवता, षडक्षर मंत्र -स्वरूप भगवान श्रीराम की स्तुति करते हुए कहते हैं कि कामरूपधारी तथा मायामय स्वरूप ग्रहण करने वाले श्रीराम को नमस्कार है। वेदों के आदि कारण ॐकार स्वरूप श्रीराम को नमस्कार है। रमा श्रीसीताजी को धारण करने वाले, रमणीय अधरों वाले, आत्मरूप नयनाभिराम श्रीराम को नमस्कार है। श्रीजानकी जी का शरीर ही जिनका आभूषण है अथवा जो जनक-नन्दिनीजी के श्री विग्रह को स्वयं ही श्रृंगार आदि से विभूषित करते हैं उन मंगलमय रघुबीर को नमस्कार है।

कामरूपाय रामाय नमो मायामयाय च।
नमो वेदादिरूपाय ॐकाराय नमों नमः।।
रमाधाराय रामाय श्रीरामायात्म मूर्त्तये।
जानकी देह भूषाय रक्षोघ्न शुभाङ्गिने।।

श्रीरामस्तवराज में 'श्रीजानकी कण्ठ भूषणम्' रूप में स्तुति करते हुए कहा गया है कि तीनों तापों के नाशक, चित्रकूट के स्वामी, कौशल्यारूपी सीपी से उत्पन्न, श्रीजानकीजी के कण्ठ के आभूषण, रत्नरूपी श्रीरामचन्द्रजी को नमस्कार हूँ-

श्रीरामरत्नमहं वन्दे चित्रकूटपतिं हरिम्।
कौशल्याशुक्तिसम्भूतं श्रीजानकी कण्ठ भूषणम्।।

पुनश्च, श्रीरामस्तवराज (श्लोक 38) में ऐसे रघुकुल के मुकुटमणि श्रीरामचन्द्रजी को मनसा-शिरसा प्रणाम किया गया है, जो लक्ष्मी को वाम भाग में विराजमान रखनेवाले लक्ष्मी अर्थात् संपत्ति को बढ़ाने वाले, लक्ष्मी के स्वामी, लक्ष्मी में निवास करने वाले और परात्पर स्वरूप हैं:-

श्रीधरं श्रीकरं श्रीशं श्रीनिवासं परात्परम्।

श्रीचित्रकूट की स्फटिक शिला का चरित्र प्रसिद्ध है-

एक बार चुनि कुसुम सुहाए । निज कर भूषन राम बनाए।
सीतहिं पहिराए प्रभु सादर । बैठे फटिक सिला पर सुंदर।।

(मा0/3/1)

श्रीप्रेमरामायण (1/408) में आचार्य प्रभु सिन्दूर दान प्रसंग का वर्णन इस प्रकार करते हैं:-

राम बाम दिसि आसन एका । बैठहिं सीय विलम्ब न नेका।।
सखिन सुनत शुचि सीय उठाई । राम बाम दीन्हें पधराई।।
लखि लखि देव सुमन बहु वरषहिं । बजत निसान मनहिं मन हरषहिं।।
गुरू निदेश लै पानि सिंदूरा । सिय सिर दीन्हें रघुवर पूरा।।
बहुरि सुआसिनि सेंदुर दीन्हा । चिर अहिवात मनहुँ करि चीन्हा।।

श्रीप्रेमरामायण के कोहवर में लहकौर प्रसंग कुछ विलक्षण आह्लाद प्रदान करने वाला है-

होन लग्यो लहकौर सुखद सुठि, रमा लखत हुलसानी।
भूलि गईं तन मन सुधि सिगरी, सिय महँ मनहु समानी।।
रामहिं लगी सिखावन गौरी, देवहिं सियहिं पवाई।।
सियहिं सिखावत शारद देवी, राम अरपि तुम खाई।।
राम पवाय सीय मुख कौरहिं, पीछे आपहु पाई।।
लाड़िलि तनिक दिखाय सकोचहि, लीन्हीं निज मुख नाई।।
देखत दशा हँसी दै तारी, रघुबर सरहज सारी।।

श्रीलीलासुधासिन्धु (पृ0 542, पद421) में अवध विहार का वर्णन करते हुए प्रेमावतार श्रीस्वामीजी प्रीतम के द्वारा प्रियाजू के केश सम्हार का दृश्य प्रस्तुत करते हैं:-

प्यारी जू को प्यारो केश सम्हार।
अँतर लगाय के पाटी पारत, निज कर कंज पियार।
परसि परसि मन मोद मगन हवै, प्यारत हिय को हार।
वेणी गूंथि सजत चूड़ामणि, सुन्दर सुमन श्रृंगार।
माँग भरत सिंदूर की रेखन, जनु छवि सीम सुधार।

प्रस्तुत अवध विहार प्रसंग (लीला सु0 सि0 पृ0 442-460) में प्रिया-प्रीतमजू का परस्पर मनुहार, बलिहार अवलोकनीय है। प्रियाजू, प्रीतमजू की आंखों पर बलिहार हैं-

पियाजू के अखियन की बलिहारी।
चंचल चलत रहै अति चोखी, रसिकन हेतु कटारी।।
अनुपमेय देखत चितकर्षति, श्वेत श्याम रतनारी।।
अंजन सान चढ़ी चटकीली, बरबस स्वेच्छाचारी।।
हर्षण बचत न निरखन वारे, छप छप मारत मारी।।

तो, प्रीतमजू, प्रियाजू की चितवनि पर अपने को न्यौछावर किये हुए हैं:-

प्यारी! प्यारी जू की चितवनि मीठी।
शील भरी संकोच की अयना, जग रस जानति सीठी।।
छमा दया कृप करूणा पूरी, अतिहि रसीली दीठी।
जेहि को स्वाद चखत निशिबासर, प्यारो न कबहुँ उदीठी।।
हर्षण मधु ते मधुर कहौं का, राम न देवत पीठी।।

प्रिया-प्रीतम जू दोनों मिलकर एक हो जाते हैं और एक ही परमानन्द तत्व, आस्वादन हेतु दो शरीर धारण कर लेता है-

दुइ के इक, इक के दुइ गात।
पिय पै प्रिया, प्रिया पै प्यारे, वारि स्वकहि बलि जात।।
ये इनको, वे उनको लखि, आनंद सिन्धु समात।
परसि परस्पर प्रेम में पागत, सिगरो भान भुलात।।
रहि न सकत क्षण एक, एक बिनु, रसरूपी रस रात।
रूप, शील, गुण, केलि कला महँ, दूनहु दिव्य दिखात।।

(लीला सु0सि0, पृ0 553)

श्रावण झूला काल में नित्य अंतिम के दो पद इस प्रसंग में ध्यातव्य हैं-

दशरथ राजदुलारे सिया संग झूलें हो।
सरयू किनारे सुहाई कदम जुरि छहियाँ हो।
ताहि तर झूलें हिंडोरा दिए गलबहियाँ हो।
एक ओर जनक किशोरी सखिन संग सोहैं हो।
एक ओर राघो विहारी, लली मुख जोहैं हो।
प्यारी की लट पिया जुलुफन झूलत अरुझें हो।
अचल रहें, 'सखे श्याम', कबहुँ नहिं सरूझें हो।

(झूलन विहार पदा0, पद 168)

<u>दूसरा पद-</u>

प्रीतम प्यारी बसो उर ऐसे।
झूलत कुंज हिंडोर हरषि हिय, रस रसिया रस लय से।।
क्रीट चन्द्रिका, मुख से मुख मिल, अधर पियत प्रिय पय से
हिय ते हृदय, मेलि भुज फंदनि, गण्ड मेलि मधुमय से।।

अरुझीं अलकें एक एक ते, मिलहिं नगिनि दुइ जैसे।
निरखि निरखि सखियाँ सुख सानहिं, मिली महानिधि तैसे
नृत्य गान करि वाद्य बजावहिं, रमी रहैं बिनु भय से।
हर्षण करि कैंकर्य मगन मन, जेहि ते दोउ सुख सय से।।

(लीला सुधा0 पृ0 492-93)

इस प्रकार, प्रतीत होता है कि श्रीसीतामंत्र के बीज में जो रकार है, वह मिथिला के कोहवर-विहारी दूलह सरकार हैं और श्रीराममंत्र के बीज 'राम' में जो अकार है, वह अवध विहारिणी जगज्जननी जानकी जू हैं। श्रीसीतामंत्र माधुर्य-वाचक है और श्रीराममंत्र ऐश्वर्य-वाचक। युगल मंत्रों के वाच्य श्रीसीतारामजी महाराज ही हैं। अतः दोनों मंत्र भिन्न-भिन्न कहे और लिखे जाते हैं लेकिन दोनों अभिन्न हैं।

***

।। श्री रामः शरणं मम ।।

क्रमांक- 18

(3) ईकारार्थ-निरूपण

श्रीसीतामंत्र के 'श्रीँ' बीज में जो ईकार है, वह 'महामाया' का वाचक है, यह श्रीप्रेमरामायण (1/मं0 7)- वर्णित 'आदिशक्तिं महामायां बन्देऽहं श्रीरामवल्लभाम्' श्लोक के आधार बीज का पदच्छेद करते समय पूर्व में कहा गया है। वरदा तंत्र में "महामायार्थ 'ई' शब्दों" का प्रमाण मिलता है। श्रीसीतोपनिषद् में कहा गया है कि "सीता यह उनका नामात्मक रूप तीन वर्णों का है और वे साक्षात् योगमाया-स्वरूपा हैं। संपूर्ण जगत्-प्रपञ्च के भगवान् विष्णु बीज हैं और उनकी योगमाया 'ईकार' रूपा है। वे "ईकार-रूपिणी अव्यक्त रूपा महामाया अपने चन्द्र सन्निभ अमृतमय अवयवों एवं दिव्य अलंकार, माला, मुक्तामालादि आभूषणों से अलंकृत स्वरूप में व्यक्त होती हैं।"

शास्त्रों में श्रीजू को मुख्यतः 'विष्णुमाया' ही कहा गया है:-

या देवी सर्वभूतेषु विष्णुमायेति शब्दिता (मार्कण्डेय पु0/82/92)

यह अनंत बल संपन्न वैष्णवी शक्ति हैं। विश्व की बीज स्वरूपा एवं परमा माया हैं। ये समस्त जगत् को मोहित करती हैं और प्रसन्न होने पर मोक्ष प्रदान करती हैं। ये सृष्टि-पालन-संहार की शक्तिभूता सनातनी देवी, गुणों का आधार तथा सर्वगुणमयी हैं। ये विष्णु की महामाया, ज्ञानियों के चित्त को भी बलपूर्वक मोह में डाल देती हैं। ये संपूर्ण चराचर जगत की सृष्टि करती हैं। यही परा विद्या संसार के बंधन और मोक्ष की कारणरूपा सनातनी देवी और संपूर्ण ईश्वरों की भी अधीश्वरी हैं:-

त्वं वैष्णवी शक्तिः अनन्तवीर्या विश्वस्य बीजं परमासि माया।
सम्मोहितं देवि समस्तमेतत्, त्वं वै प्रसन्ना भुविमुक्तिहेतुः।।
सृष्टि स्थिति विनाशानाम् शक्तिभूते सनातनि।
गुणाश्रये गुणमये नारायणि नमोस्तुते।।

(मार्कण्डेय पु0/88/4,10)

ज्ञानिनामपि चेतांसि देवी भगवती हि सा।
बलादाकृष्य मोहाय महामाया प्रयच्छति।।
तया विसृज्यते विश्वं जगदेतच्चराचरम्।
सा विद्या परमा मुक्तेः हेतुभूता सनातनी।

संसार वंधहेतुश्च सैव सर्वेश्वरेश्वरी।।

(मार्कण्डेय0/78/42,44)

महानिर्वाण आदि तंत्रों में पुरुष-प्रकृति और माया का निरूपण द्विदल युक्त चणक के प्रतीक रूप में हुआ है। जैसे दो दल और छिलका मिलकर चणक की संज्ञा होती है, उसी प्रकार शिव-शक्ति और माया के संयोग को ब्रह्म कहा जाता है।

(श्रीराम चरित मानस में शैव और शाक्त भाव, पृ0290)।

श्रीरामचरितमानस (2/252) में गोस्वामी जी ने ब्रह्ममाया, विष्णुमाया और शिवमाया सबको सियमाया के अन्तर्गत माना है- माया सब सियमाया माहूँ।

क्योंकि इन्हीं के अंश से असंख्य लक्ष्मी, उमा और ब्रह्माणी का प्राकट्य होता हैः-

जासु अंस उपजहिं गुनखानी।
अगनित लच्छि उमा ब्रह्मानी।।
भृकुटि विलास जासु जग होई।
राम बाम दिसि सीता सोई।।

(मा0/1/148)

मनुशतरूपा को प्रभु ने केवल अपने प्राकट्य का ही वरदान नहीं दिया अपितु अपनी माया के साथ प्राकट्य का संकेत भी किया क्योंकि विवाह, वन, रणादि लीला बिना इनकी सहायता के हो नहीं सकतीः-

आदिसक्ति जेहि जग उपजाया । सोउ अवतरिहि मोरि यह माया।।

(मा0/1/152)

श्रीरामचरितमानस (3/15) में मर्यादा पुरुषोत्तम श्रीरघुनाथजी, श्रीलक्ष्मणजी से ईश्वर-जीव-माया तत्व का निरूपण करते हुए कहते हैं कि इन्द्रियों के सहित जहाँ तक मन की गति जाती है, वह माया का पसारा है। वही जीव मात्र के हृदय में मैं और तैं, मोर और तोर अर्थात् (अहम् और मम) रूप में स्थित हैः-

मैं अरु मोर तोर तैं माया । जेहि बस कीन्हें जीव निकाया।।
गो गोचर जहँ लगि मन जाई । सो सब माया जानेहु भाई।।

इसके दो भेद हैं- एक विद्या और दूसरी अविद्या। अविद्या के वशीभूत होकर जीव भवकूप में गिर जाता है और अनेक दुःख पाता है। विद्या माया इस जगत की सृष्टि करती है, सभी गुणों को धारण करती और कराती हैं। लेकिन यह सब सारा काम वह प्रभु की प्रेरणा और शक्ति से करती हैः-

तेहि कर भेद सुनहु तुम्ह सोऊ । विद्या अपर अविद्या दोऊ।।
एक दुष्ट अतिसय दुखरूपा । जा बस जीव परा भवकूपा।।
एक रचइ जग गुन बस जाके । प्रभु प्रेरित नहिं निज बल ताकें।।

प्रत्येक मोक्षकामी जीव को माया, ईश्वर और अपने स्वरूप का ज्ञान अपेक्षित है। जीव का जीवत्व तभी तक है, जब तक उसे इन तीनों का सद्गुरु कृपा से ज्ञान नहीं हुआ हैः-

माया ईस न आपु कहँ जान कहिअ सो जीव।
बंध मोच्छ प्रद सर्वपर माया प्रेरक सीव।।

(मा0/1/152)

श्रीआचार्यप्रभु स्वामिपाद 'प्रपत्ति प्रभा' (श्लोक 6-7) में श्रीलाड़लीजू की वंदना इन शब्दों में करते हैंः-

जगत् कारण रूपाञ्च जगदानन्द दायिनीम्।
आदिशक्तिं महामायां ब्रह्मैव ब्रह्म वर्चसीम्।।
परमाह्लादिनीं श्यामां सुभगां रामवल्लभाम्।
विदेह तनयां वन्दे सीतां प्रणव रूपिणीम्।।

वैदेही दर्शन (पृ03) में श्रीस्वामीजी कहते हैं- ''श्रीसीताजी से जगत् का सृजन, संरक्षण और संहार होता है इसलिए जगत रूपिणी भी यत्र-तत्र कहा गया है। कहीं-कहीं माया भी इसलिए कहा गया है कि विद्या और अविद्या माया को वैदेही की शक्ति और प्रेरणा से ही अपना-अपना कार्य करने की क्षमता प्राप्त होती है।''

श्रीप्रेमरामायण (1/143-44) में श्रीसीताजी के प्राकट्य के उपरान्त छःह मास तक श्रीजनकजी के परिवार में बहुत पुत्रियों का जन्म हुआ। श्री किशोरी जू की छोटी माता महारानी सुकांतिजू से श्रीउर्मिलाजी का जन्म हुआ। महाराज कुशकेतुजी की श्रीमाँडवीजी और श्रुतिकीर्तिजी श्रीकिशोरीजू की सेवा हेतु प्रकट हुईं। श्रीचन्द्रभानु महाराज को श्रीचन्द्रकलाजी प्राप्त हुईं तो श्रीशत्रुजित महाराज को श्रीचारुशीलाजी प्राप्त हुईं। इसी प्रकार मिथिला के अन्य महलों में हेमा, क्षेमा, मदन, मंजरी, वरारोहा. सुभगा, पद्मगंधा, लक्ष्मणा, चित्रा आदि कन्याओं का जन्म हुआ। इस प्रकार श्रीसीताशक्ति के अंश से अनेक शक्ति-अंशों का प्राकट्य हुआः-

सीय जनम के समय ते, षट महिना पर्यंत।
राजसदन परिवार महँ, पुत्रि बहुत प्रगटंत।।
सीय विमात्र सुकांति सुनामा । जन्मि उर्मिला पुत्रि ललामा।।

युग पुत्री कुशकेतु सुनारी । जन्मी गुणन रूप उजियारी।।
नाम माँडवी अरु श्रुति कीरति । सिय सेवा हित तन मन धीरति।।
चन्द्रकला प्रिय चन्द्रभानु घर । शीलाचारु जनमि अरिजित वर।।
हेमा छेमा मदन मंजरी । वरारोह सुभगा सुखाकरी।।
गँधा पद्म और सुलक्षमना । सुखमा चित्रा विपुल जनमना।।
यहि विधि पुत्रि राजपरिवारा । भई प्रकट मन मोद अपारा।।
घर घर आनंद अमित सुहावा । दिन प्रति बाजत मोद बधावा।।
आदि शक्ति जहँ प्रकट भइ, शक्तिन अंश सुसाथ।
मिथिला सुख नहिं कहि सकैं, कबि शारद अहिनाथ।

श्रीसीतामंत्र का पदच्छेद करते हुए पूर्व में कहा गया है कि जिस प्रकार 'श्रीँ' बीज में ईकार 'श्' और 'र्' दोनों को आवृत्त किए हुए है, उसी प्रकार पदच्छेद के आधार-श्लोक (प्रे/1/मं/7-8) :-

विदेह तनयां सीतां लक्ष्मीनिध्यनुजां प्रियाम् - में 'विदेहतनयां' और 'लक्ष्मीनिध्यनुजां प्रियाम्' पद अपने पितृ और भ्रातृ (फलतः श्रीराम के प्रति जामाता और भाम) संबंधों से 'सीतां' पद को दोनों तरफ से घेरे हैं। अतः बीज का 'ईकार' श्रीविदेहराज एवं श्री लक्ष्मीनिधि जी का भी वाचक है। इस प्रकार 'ईकार' कुलार्थक भी है।

सम्पूर्ण श्रीप्रेमरामायण इन्हीं पिता-पुत्र के तप और प्रेम का चरित है। जगज्जननी श्रीजानकीजी का प्राकट्य हो अथवा श्रीरघुनाथजी की प्राप्ति, सब इन्हीं के प्रेम प्रताप से हुआ है। श्रीप्रेमरामायण के फलभोक्ता श्रीलक्ष्मीनिधिजी महाराज ही हैं अतः वे ही इस महाकाव्य के नायक हैं। जैसे ही श्रीविदेहकुमार का अवतार होता है, गुरुदेव श्रीशतानन्दजी महाराज इनका नामकरण करते हैं:-

बालक-निधि श्रीलक्ष्मी सीता । होई नित्य अवसि सुपुनीता।।
सीता-निधि सम शिशु सुहाना । पाई प्रेम तासु सरसाना।।
ताते श्रीलक्ष्मीनिधि नामा । होई जग महँ ललित ललामा।।

(प्रे/1/58)

श्रीलक्ष्मीस्वरूपा सीताजी जिनके निधि हैं और श्रीसीताजी के जो निधि हैं, वे श्रीलक्ष्मीनिधिजी महाराज हैं। श्रीप्रेमरामायण में आरंभ से अंत तक भ्रातृ-भगिनि के इसी प्रकार पारस्परिक प्रेम का निर्वाह हुआ है। " लोभी हृदय बसइ धनु जैसे" । जैसे लोभी के हृदय में धन का अहर्निश चिंतन बना रहता है, उसी प्रकार दोनों के हृदय में एक

दूसरे का चिंतन प्रेमरामायण काव्य और प्रेमरामायणकार के प्रकट जीवन में देखने में आता है। आचार्य प्रभु की कथनी और करनी एक है।

श्रीविदेहराज और श्रीविदेह कुमार दोनों के पितृ और भ्रातृ भाव का एक संक्षिप्त दिग्दर्शन इस क्रम में अपेक्षित है। पिता-पुत्र दोनों को अपने सद्गुरुदेव के वचनों पर पूर्ण विश्वास है तद्नुसार दोनों को अपने-अपने भावों के अनुसार प्रभु की प्राप्ति की त्वरा है। श्रीविदेहराजजी को चिंता है कि श्रीगुरुदेव ने कहा है कि आपको श्रीरामजी जामाता रूप में मिलेंगे। जब मुझे अभी तक पुत्री की प्राप्ति ही नहीं हुई तब जामाता कैसे आएँगे ?

योगिराज मुनि मोहिं बताई । तव जामाता राम गोसाईं।
पुत्री मोरे एक नहिं, सुनहु प्रिया सुखसार।
आदि शक्ति पति राम हैं, यह संदेह खभार।

(प्रे/1/66)

दूसरी ओर, श्री विदेह कुमार को भी विश्वास है कि जब गुरुदेव ने कहा है कि श्रीरामजी तुम्हारे बहनोई (भाम) हैं तब उन्होंने इस भाव से श्रीरामजी की प्राप्ति के लिए प्रण कर लियाः-

मिलन चाह उपजी उर भारी । मिलौं कवन विधि अवध विहारी।।
दिन नहिं भूख नींद नहिं राती । बढ़ी भावमय प्रीति सुहाती।।
प्रण कीन्हेउ निज हृदय महाना । भाम भाव बिनु मिलब न आना।।

(प्रे/1/117)

तद्नुसार श्रीविदेहकुमार शिवालय में जाकर छःह महीने तक तपस्या करते हैं। श्रीशंकरजी प्रसन्न होकर वरदान देते हैंः-

ब्रह्म राम श्रीअवध विहारी । ब्यहिहैं बहिन सिया सुकुमारी।
राम प्राण प्रिय बनहु सदाहीं । नेत्र विषय मानै तेहि काहीं

(प्रे/1/117)

श्रीविदेहराजजी को आदिशक्ति-स्वरूपिणी पुत्री की प्राप्ति हेतु जब अधिक चिंता सताने लगती है तब श्रीशंकरजी की आज्ञा प्राप्त होती है पुत्रि इष्ट यज्ञ करने कीः-

मन ही मन नित करहिं सुशोचा । मानत भाग आपनो पोचा।।
अब लगि शक्ति पुत्रि नहीं आदी । का विधि राम मिलैं अहलादी।।
करत शोच तन्द्रा लगी, शिव शुभ आयसु दीन्ह।
पुत्रि इष्ट सारहु सुभग, यज्ञ यथा विधि चीन्ह।। (प्रे/1/125)

श्रीगुरुजी की आज्ञा के अनुसार श्रीविदेहराज स्वयं हल-कर्षण करते हैं साक्षात् जगज्जननी आदिशक्ति का प्राकट्य होता है (प्रे/1/127-31) वे स्तुति करते-करते धराशायी हो जाते हैं। श्रीसीताजी उन्हें उठाकर यह उद्घाटन करती हैं कि आपने सुता भाव से पूर्व में मेरी उपासना की है इसीलिए मुझे प्रकट होना पड़ा। आप सचमुच मेरे पिताश्री हैं, पुत्री मानकर मेरा पालन करें:-

सुता भाव तव बहु विधि सेवा । कीन्हेसि प्रकट मोहि गुनि लेवा।।
सत्य सत्य तुम मोरे दाऊ। पुत्रि मानि पालिय चित चाऊ।।

दूसरी ओर श्रीजानकीजी के प्राकट्य के उपरान्त श्रीकिशोरीजू की स्वयं भ्रातृ-जिज्ञासा करने पर वे अपने प्राणप्रिय भ्राता का दर्शन करती हैं तब वे तुरत आकर उन्हें मूर्च्छा से जगाती हैं। पृथ्वी माता दोनों भ्राता-भगिनि को अपनी गोद में ले लेती हैं। देवता, मुनि, आदि उपस्थित सभी श्रीविदेहकुमार के भाग्य की बड़ाई करने लगते हैं:-

जय जय जनक सुवन बड़भागी । सीयकृपा अस लहै न त्यागी।।
सियहिं प्राण प्रिय अहहु कुमारा । सीय अहैं तव प्राण अधारा।।
भ्रात भगिनि दूनहु परमारथ । दीर्घ दर्शि अस कहैं यथारथ।।

(प्रे/1/135)

भ्रातृ-भगिनि का प्रेम सहज स्वाभाविक है। भ्राता अपने महल की छत पर अपनी किशोरीजू को गोद में लेकर नगर-दर्शन कराते हैं। कभी किशोरीजू के हाथ में पतंग देकर पतंग उड़ाना सिखाते हैं। कभी झूलन में श्रीकिशोरीजू को लेकर झूला झुलाते हैं। कभी वीणा-वादन सिखाते हैं:-

कबहुँ कुँअर लै गोद सिय, भवन ऊपरे जाय।
अनुपम नगर दिखावहीं, लखि लखि सो सुख पाय।।
कबहुँ देहि सिय पानि पतंगा, हर्षहिं कुँअर उड़ावन रंगा।।
झूलन महँ सिय बैठि झुलावैं । कबहुँ विविध विधि खेल खिलावैं।।
कबहुँ सियहि दै वेणु सुवीणा । सुनैं सुनावहिं कुँअर प्रवीना।।

(प्रे/1/158-59)

भ्रातृ द्वितीया पर्व हो अथवा श्रावण पूनो, जनक लाड़िलीजू भैया पर बलिहार होती हैं तो भैयाजू श्रीलली ऊपर। ललीजू की चाह केवल यही है कि भैया का प्यार बना रहे। न उन्हें अमृत सुख चाहिए, न मोक्ष सुख और न वैकुण्ठादिक का सुख:-

बने रहैं मोरे बड़ भइया । लिये गोद मोहिं प्यारि अथैया।।
भरि वात्सल्य प्यार प्रिय पाऊँ । यही चाह मन नाहिं अघाऊँ।।

अमृत सुख अरू मोक्ष सुख, लोक विकुण्ठहु जान।
सार्वभौम सुख नहिं गिनहुँ, भइया प्यार समान।।

इस प्रकार शकाररूपा श्रीसीताजी और रकार रूप श्रीरामजी, दोनों ईकार रूप श्रीविदेहराज एवं श्रीविदेहकुमार से प्रेमावृत्त हैं।

निष्कर्षतः 'श्री ँ' बीज के उपर्युक्त श्, र् और ई अंगों के विवेचन से जो एक चित्र स्पष्ट होता है वह इस प्रकार उपास्य, ध्येय और मननीय है। शकार रूपिणी श्रीसीताजी के दक्षिण भाग में रकार रूप श्रीरामजी महाराज स्थित हैं अर्थात् श्रीरामजी के बाम भाग में श्रीसीताजी हैं और श्रीरामजी के दक्षिण भाग में ईकार रूप श्रीलक्ष्मीनिधिजी हैं। इनके सम्मुख सेवा में तत्पर श्रीसिद्धि कुँअरिजू हैं। सिंहासन के चारो ओर श्रीचन्द्रकलादि सखियाँ अपनी-अपनी सेवा में संलग्न हैं। इस 'ई' का ही विस्तार 'सीतायै' की चतुर्थी विभक्ति है, जिसका निरूपण आगे किया जा रहा है। अतः ध्यान का एक श्लोक इस प्रकार बनता है:-

दक्षिणे श्रीलक्ष्मीनिधिर्यस्य बामे च जनकात्मजा ।
पुरतो सिद्धि कुँअरि यस्य तम् वन्दे रघुनन्दनम्।।

पुनः, दूसरा चित्र उपर्युक्त निरूपण से यह बनता है:- श्रीकिशोरीजू के दक्षिण भाग में श्रीप्रभु हैं और बाम भाग में श्रीलक्ष्मीनिधिजी । इस प्रकार प्रीतम और भैया के बीच में श्रीकिशोरीजू पूर्ण हैं।

पुनश्च, 'विदेहतनयां सीतां लक्ष्मीनिधि-अनुजां प्रियाम्' के आधार पर श्रीलाड़लीजू, पिता और भैयाजू से दोनों ओर घिरी हैं।

***

।। श्री रामः शरणं मम ।।

क्रमांक- 19

(3) अद्र्ध मात्रा निरूपण

'ॐ' को 'ओम्' रूप में भी लिखा जाता है। उच्चारण के अनुसार मंत्र फलदायी होता है। सभी देवता के मंत्र अनुस्वार युक्त ही होते हैं, जैसे सूं सूर्याय नमः, चं चन्द्राय नमः, मं मंगलाय नमः इत्यादि। अनुस्वार का उच्चारण नासिका से होता है इसलिए इसे आनुनासिक कहते हैं। व्याकरण के अनुसार 'म्' का अनुस्वार हो जाता है। मंत्र का अनुनासिक रूप में उच्चारण करने से उस मंत्र के निर्गुण स्वरूप का बोध होता है, जो गूढ़ और अनुभव से परे है। जब मंत्र को चन्द्रबिन्दु युक्त उच्चारण करते हैं तब वह 'म्' (हलन्त म्) रूप में ओष्ठ्य हो जाता है, जिसके फलस्वरूप किसी देवता के सगुण स्वरूप का साक्षात्कार-मूलक अनुभव प्राप्त होता है। इसीलिए श्रीआचार्य प्रभु ने श्रीप्रेमरामायण (1/1) के प्रथम मंगलाचरण में 'रामेति सर्वबीजस्य' पद का प्रयोग किया है। पुनः श्रीअयोध्याजी श्रीराममंत्रार्थ मण्डपम् के गर्भगृह में 'राम् रामाय नमः' पद उत्कीर्ण कराने का अनुग्रह किया है।

'राँ' बीज हो अथवा 'ॐ' बीज, चन्द्रबिन्दु में जो तीन तत्व हैं- अद्र्धमात्रा, विन्दु और नाद, उन्हें मंत्र का चतुष्पाद कहा गया है। अ, उ, म् अथवा र्, आ, म् - ये तीन पाद हैं और अर्द्धमात्रा युक्त विन्दु नादचतुष्पाद हैं। माण्डूक्योपनिषद् (मंत्र 2) में परब्रह्म को चतुष्पाद युक्त कहा गया है-

सर्वं हि एतद् ब्रह्म अयमात्मा ब्रह्म सोऽयमात्मा चतुष्पात्। प्रथम पाद वैश्वानर, द्वितीय तैजस, तृतीय प्राज्ञ का वर्णन करने के पश्चात् चतुर्थ पाद का निरूपण करते हुए कहा गया है कि 'जिसका ज्ञान न बाहर की ओर है, न भीतर की ओर है और न दोनों ओर ही है। जो न देखने में आ सकता है, न व्यवहार में लाया जा सकता है, न ग्रहण करने में आ सकता है, न चिंतन करने में, न बतलाने में आ सकता है। जिसका कोई लक्षण नहीं है। जिसमें समस्त प्रपंच का अभाव है। एकमात्र परमात्मसत्ता की प्रतीति ही जिसमें सार (प्रमाण) है। ऐसा सर्वथा शान्त, कल्याणमय, अद्वितीय, तत्व, पूर्ण ब्रह्म का चौथा पाद है। (माण्डूक्यो/मंत्र 3-7) यह चतुर्थ पाद मात्रा-रहित है- "अमात्रश्चतुर्थो" (माण्डूक्यो/मंत्र 12)।

इसी प्रकार, श्रीरामोत्तरतापनीयोपनिषद् (यथा पूर्व वर्णित) में अर्द्धमात्रा को चतुष्पाद तुरीय स्वरूप श्रीरामजी को माना गया है। ब्रह्मानन्द ही एकमात्र इनका विग्रह है-

अर्धमात्रात्मको रामो ब्रह्मानन्दैक विग्रहः।

अर्द्धमात्रा का उच्चारण भी नहीं किया जा सकता है। इसलिए चतुष्पाद को मात्रातीत और उच्चारणातीत भी कहा जाता है।

इन्हीं श्रुति-प्रमाणों के आधार पर श्रीसीतामंत्र के 'श्रीँ' बीज में अर्द्धमात्रा को 'तुरीय' स्वरूप कहा गया-**अद्र्धमात्रा तुरीय च**

श्रीसीतोपनिषद् (उपनिषद् अंक, पृ0 659) में कहा गया है कि "जो सनातन ब्रह्ममय रूपधारिणी क्रियाशक्ति कही गयी हैं, वह भगवान् की साक्षात् शक्ति हैं। भगवान् के स्मरण मात्र (संकल्प मात्र) से वे जगत् के रुपों को प्रकट करती तथा दृश्य जगत् में स्वयं व्यक्त होती हैं। वे शासन एवं कृपास्वरूपा, शान्ति तथा तेजोरूपा, व्यक्त (प्राणियों) एवं अव्यक्त (देवादि) की कारणभूता भगवान् के साथ चलने वाली (उनके संकल्प से ही गति करने वाली), भगवान् से कभी विलग न होने वाली एवं अविनाशिनी, निरन्तर भगवान् के साथ का ही आश्रय करनेवाली सृष्टि, स्थिति, संहार, तिरोधान, अनुग्रह आदि समस्त सामर्थ्यों से युक्त होने के कारण साक्षात् शक्तिरूप में वर्णित होती हैं।

पुनश्च, श्रीसीताजी के साक्षात् स्वरूप का वर्णन करते हुए कहा गया है कि "श्रीसीताजी की वीर शक्ति चतुर्भुजा हैं। उनके हाथों मे अभय एवं वरदान की मुद्राएँ तथा दो कमल हैं। किरीट एवं आभूषणों से वे भूषिता हैं। संपूर्ण देवताओं से घिरी हुई, कल्पवृक्ष के मूल में चार श्वेत हाथियों द्वारा रत्न जटित कलशों के अमृत जल से अभिषिक्त होती हुई आसीन हैं। ब्रह्मादि समस्त देवता उनकी वन्दना करते हैं। अणिमादि अष्ट ऐश्वर्य से वे युक्त हैं। उनके सम्मुख खड़ी होकर कामधेनु उनकी स्तुति करती हैं। वेद शास्त्र आदि भी मूर्तिमान होकर उनकी स्तुति करते हैं। जया आदि अप्सराएँ एवं देव नारियाँ उनकी सेवा कर रहीं हैं। सूर्य एवं चन्द्र दीपक बनकर वहाँ प्रकाश कर रहे हैं। ह्लादिनी एवं माया उनके दोनों ओर चँवर डुला रही हैं। स्वाहा एवं स्वधा उन पर पंखे झलती हैं। भृगु और पुण्य आदि महात्मा उनकी पूजा कर रहे हैं।

इस प्रकार भगवती लक्ष्मी के भगवान् से पृथक् भी ध्यान करना चाहिए। उन्होंने अपने को अनुरूप दिव्य आभूषणों से अलंकृत किया है। वे स्थिर् होकर् प्रसन्न नेत्रों से समस्त-देवताओं द्वारा पूजित वीरलक्ष्मी कही जाती हैं।"

अर्द्धमात्रा तुरीय स्वरूप है। तुरीय स्वरूप में शक्ति हों अथवा शिव, श्रीसीताजी हों अथवा श्रीरामजी सभी देवता सर्वतंत्र स्वतंत्र होते हैं। इसी का निरूपण उपर्युक्त श्रीसीतोपनिषद् में किया गया है। शाक्तमत में तंत्र के अनुसार दो कुल हैं, एक काली कुल दूसरा श्रीकुल। काली कुल शक्ति के सर्वतंत्र स्वतंत्र स्वरूप का निरूपण करता है लेकिन श्रीकुल व्यवहारतः एवं उपासना की दृष्टि से शक्ति के परतंत्र स्वरूप का ही निरूपण करता है। श्रीलक्ष्मी हों अथवा श्रीसीताजी अथवा श्रीराधाजी, सभी अपने प्रभु के परतंत्र रही हैं। श्रीप्रभु ने श्रीस्वामिनीजू पर स्वतंत्रता का आरोप लगाया लेकिन वे पारतंत्र्य एवं अनन्यार्हत्व स्वरूप का प्रमाण देकर रसातल में प्रवेश कर गईं। श्रीआचार्यप्रभु के शब्दों में ही श्रीस्वामिनीजू के प्रभु पारतंत्र्य और अनन्यार्हत्व की झांकी दर्शनीय है। प्रपत्ति दर्शन (सूत्र 14, पृ0 12-13) में उनके शब्द हैं-

"प्रभु पारतंत्र्य का दर्शन भी सर्वभावेन श्रीराजकिशोरीजू की चर्या में सर्वत्र एकरस होता है। श्रीरामजी के सर्व कैंकर्य को स्वयं अपने कर-कमलों से करना (जबकि अनन्त सेवक-सेवकिनियाँ राजगृह में विद्यमान थीं)पारतंत्र्य का ही प्रमाण है। श्रीरामजी के साथ वन-गमन करना एवं प्रभु-वियोग को न सहना, स्व सुख का परित्याग तथा श्रीरामजी के सुख को स्व सुख समझना और तद्नुसार आचरण करना पारतंत्र्य का ही प्रवल प्रमाण है। रावण से वे स्वयं कहती हैं, "अनन्या राघवेणाहं भास्करेण यथा प्रभा" अरे रावण! तुझे मैं अपने तेज से भस्म करने में सर्वथा समर्थ हूँ किन्तु मैं प्रभु परतंत्रा हूँ, उनकी बिना आज्ञा के तुमको भस्म नहीं कर रही हूँ।" (वाल्मीकीय0/सु/22/20) ये वचन पारतंत्र्य-द्योतक ही हैं। पुनः वाल्मीकि आश्रम के पास परित्यक्ता श्रीजनक-प्रसूता जानकीजू के वचन हैं कि हे लक्ष्मण! श्रीरामजी की इच्छा को सुखपूर्वक पूर्ण करना मुझपरतंत्रा का स्वरूप है। अस्तु, मैं अपनी न होने के कारण उन्हें कोस नहीं रही हूँ और न कोई उपालंभन दे रही हूँ। उनके वियोग को न सहने वाले इस शरीर को यदि गंगा में प्रवाहित करती हूँ तो पारतंत्र्य की हानि होगी। साथ ही मेरे उदर में सूर्यवंश का वंशधर है अतएव शरीर-त्याग से स्वरूप हानि और मेरे स्वामी श्रीरामजी के अपत्य की हानि होगी, इत्यादि वचन पारतंत्र्य के प्रबल प्रमाण हैं। अंतिम विश्लेष में तो साक्षात् भू-देवी, जानकीजू के अनन्यार्हत्व की साक्षी देकर अत्यंत उच्चतम प्रमाण उपस्थित करती हैं-

मनसा कर्मणा वाचा यथा रामं समर्चये।
तथा मे माधवी देवी विवरं दातुर्महति।।

(वा0/7/97/15)

इतना श्रीकिशोरी जानकीजू के कहते ही पृथ्वी मे विवर हो गया तथा श्रीभूदेवी साक्षात् प्रकट हो गयीं और अपने अंक में भरकर श्रीसीताजी के साथ रसातल में प्रवेश कर गईं।

श्रीवाल्मीकीय रामायण (7/97/14-26) के उक्त रसातल-प्रवेश और श्रीप्रेमरामायण (1/129-133) वर्णित श्रीसीतावतार दोनों प्रसंग श्रीजनकनन्दिनीजू के तुरीय स्वरूप का प्रमाण देते हैं। जैसे श्रीजू पृथ्वी से पृथ्वीमाता की गोद में दिव्य सिंहासन में परिकरयुक्त प्रकट होती हैं वैसे ही रसातल में प्रवेश कर जाती हैं। यह उनका स्वरूप है।

वैदेही दर्शन (पृ0 2-3) में आचार्य प्रभु श्रीजनक-लाड़िलीजू के तुरीय स्वरूप का श्रुति सिद्धान्त-सम्मत निरूपण करते हैं- ''वैदेही, देह-विहीन अर्थात् प्रकृति संबंध स्पर्श शून्य, सच्चिदानन्दात्मक स्वरूप परब्रह्म की स्वरूपा शक्ति को दीर्घदर्शी मनीषी लोग वैदेही कहकर श्रुति संकलित वाक्यों को प्रमाणित किया करते हैं। त्रिमात्रिक (अ+उ+म) ओम् की वाच्या किंतु उससे सर्वथा विलक्षण परब्रह्म के चतुर्थपाद स्वरूपा वैदेही का अनिर्वचनीय एवं अचिंत्य वैभव है। सूक्ष्म-स्थूल, सत् असत्, कार्य-करण, पर-अवर और सगुण-निर्गुण से परे परम गुह्य विलक्षण श्रीसीताजी का सारतम रहस्य है। अ+उ+म इन तीन मात्राओं से रहित ओम् का सच्चिदानन्दात्मक स्वयं सिद्ध स्वरूप है, जो परमात्मा के चतुर्थपाद अर्थात् विश्व, तैजस, प्राज्ञ इन तीन पादों के कारणभूत, चतुर्थपाद परमात्मा के समान है। इस त्रैमात्रा विहीन सच्चिदानन्दात्मक ॐ के सत्ता की सुरक्षा, स्वरूपा शक्ति से ही संभव है अर्थात् वैदेही ही ओम् के ओमत्व का संरक्षण करने वाली हैं। श्रीसीताजी को ॐ-रूपिणी कार्य-कारण की एकता का विचार करके कहा गया है।''

श्रीसीतामंत्र का पदच्छेद करते हुए श्रीप्रेमरामायण (1/8) के आधार श्लोक में प्रयुक्त 'नित्यां महाभावरूपां' पद को अर्द्धमात्रा का वाच्य कहा गया है। आदिशक्ति श्रीसीताजी श्रुति-शास्त्र-प्रमाणित नित्य हैं, शाश्वत् हैं, सनातनी शक्ति हैं। यह इनका तुरीय स्वरूप है। यही तुरीय स्वरूपा शक्ति जब लीला हेतु शरीर धारण करती हैं तब इनका यह स्वरूप इनके 'महाभाव स्वरूप' में अप्रकट रहता हैं। जीवमात्र को प्रभु-प्राप्ति हेतु यह महाभाव स्वरूप वे प्रकट करती हैं। आचार्यप्रभु उपदेशामृत (पृ0 20-21) में महाभाव के संबंध में इसके प्रकारों के सहित जो सूत्र प्रस्तुत करते हैं, वे उद्धरणीय हैं:-

(1) अनुराग जब और-और निखार आने के कारण अत्यंत ऊँची स्थिति को प्राप्त कर लेता है, जिसका परिसीमन नहीं किया जा सकता तथा वैसी ही दशा प्रेमास्पद के हृदय में प्रकट कर देता है, तव उसे महाभाव कहते हैं।
(2) महाभाव भी रूढ़ और अधिरूढ़ भेद से दो प्रकार का होता है।
(3) जब प्रियतम के संयोग जनित आनंद में कल्प, लव के समान तथा वियोगजन्य दुख में लव, कल्प के समान लगने लगे तब उस अवस्था को रूढ़ महाभाव के नाम से कहा जाता है।
(4) जब प्रियतम के संयोग-सुख के समक्ष अनन्तान्त ब्रह्माण्डों की सुखराशि अत्यंत अल्प और वियोगजन्य दुख के सामने सर्व प्रकार की महा आपत्तियाँ नगण्य प्रतीत होने लगे, तब उस स्थिति को विद्वानों ने अधिरूढ़ महाभाव की संज्ञा प्रदान की है।
(5) अधिरूढ़ महाभाव के भी मोदन और मादन नाम के दो प्रकार होते हैं।
(6) मोदन के आविर्भाव में प्रेमास्पद एवं प्रेमास्पद के प्रियजनों में क्षोभ उत्पन्न हो जाता है क्योंकि इस अवस्था में सात्विक का प्रदीप्त दीपक निर्विघ्न प्रकाशित बना रहता है।
(7) मोदन ही वियोगावस्था में मादन की संज्ञा प्राप्त करता है, जिसमें विरह ही दशो दशाएँ विलसती हैं।
(8) चिन्ता, जागरण, उद्वेग, कृशता, मलिनता, प्रलाप, उन्माद, व्याधि, मोह और मरण, विरह की दशो दशाओं के नाम हैं।
(9) प्रेमा भक्ति की प्राप्ति चेतन के स्वरूपानुरूप परम पुरुषार्थ है।

उज्ज्वल नीलमणिकार श्रीरूपगोस्वामी जी के अनुसार महाभाव की मादन दशा में रति से लेकर महाभाव पर्यंत सभी प्रेमस्तर उत्पन्न होते रहते हैं, जिसके आश्रय एक मात्र श्रीजू हैं। अप्राकृत मदन (श्रीकृष्ण) की भाँति मादन की गति भी दुर्वोध्य है। विहार काल में कभी बाहर प्रकाशित होता है अन्यथा विरहकाल में प्रच्छन्न रहता है-

सर्व भावोद्गमोल्लासी मादनोऽयं परात्परः।
राजते ह्लादिनी सारो राधायामेव यः सदा।।

(उज्ज्वल नीलमणि. पृ0 261)

श्रीप्रेमरामायणकार महाप्रभु ने महाभाव की मादन दशा के अन्तर्गत विरह की (1)चिन्ता (2)जागरण (3)उद्वेग (4)कृशता (5)मलिनता (6)प्रलाप (7)उन्माद

(8)व्याधि(9)मोह और (10)मरण (मूर्च्छा) दशाओं का चित्रण विरह काण्ड में जो किया है उनका अनुभव उन्होंने भाव समाधि काल में किया था। प्रेमरामायण, वन विरह काण्ड में चित्रित उक्त दशाओं का संक्षिप्त उद्धरण ही प्रस्तुत प्रसंग में पर्याप्त होगा।

(1) चिन्ता-

यहि विधि विरह व्यथा बहुताई।
छिन छिन नव नव बाढ़त जाई।।
चित महँ चिन्ता रही समाई।
चिन्तहिं चिन्तामणि रघुराई।।
चिन्तन करत चित्त लय लयऊ।
तदाकार वृत्ती जिय जयऊ।। (वन0/18)

(2) जागरण-

यहि विधि बीतत दिन लग भारी।
नींद न आवत निशा मंझारी।। (वन/ दो 21)

(3) उद्वेग-

कबहुँ कबहुँ उद्वेग महाना।
होत कुँअर तन तलफत प्राना।। (वन0/27)

(4) कृशता-

कृशित भये अति जनककुमारा।
अस्थि चर्म अवशेष अकारा।। (वन0/37)

(5) मलिनता-

मलिन वसन अरु मलिन शरीरा।
भयो कुँअर मन लहत न धीरा।। (वन0/41)

(6) प्रलाप-

मैं बनि राम बसौं बन माहीं।
रघुबर फिरे बिना सुख नाहीं।।
अस कहि कुँअर निकसि चलि दयऊ।
करत प्रलाप देह सुधि जयऊ।। (वन0/48)

(7) उन्माद-

बाढ़ेव हृदय महा उन्मादा।
कहि न जाय जो दशा विषादा।। (वन0/50)

(8) व्याधि-

नाना व्याधि भई तन माहीं।
यदपि कुँअर चित तहाँ न जाहीं।।
सकल शरीर जलन सम लागा।
नस नस पीरा भइ जिय जागा।। (वन0/53)

(9) मोह-

विरह मोह वश निमिकुल वारा।
सब विधि भूलत ज्ञान अपारा।। (वन0/58)

(10) मरण-

दिन दिन छिन छिन विरह विहारा।
बढ़त कुअँर हिय अनुप अपारा।।
सीय कहत मुरछा तन आवै।
राम शब्द भीतर रहि जावै।। (वन0/63)

श्रीप्रेमरामायण में यत्र-तत्र-सर्वत्र आचार्य प्रभु ने श्रीलाड़लीजू के इसी महाभाव स्वरूप की व्यंजना की है, जो एक स्वतंत्र लेख का विषय है। यहाँ यत्किचित् संकेत ही अनुरूप होगा। श्रीसीतावतार काल में जो स्तुति है, उसके शब्द ध्यातव्य हैं:-

जय जय रसरूपे प्रेम स्ववरूपे महाभाव रसखानी।
जय जय अहलादिनि, सुखद, सुवादिनि कृपा स्वरूप महानी।।
(प्रे/1/131/छंद)

बाल्यावस्था से ही श्रीजू में महाभाव का बीज दिखाई पड़ता है-

जनक लाड़िली हृदय मंझारा । आत्मरमण प्रभु रमेउ उदारा।।
बारहिं ते रघुपति पद राँचो । मन अनन्य ढर प्रेम सु साँचो।।
(प्रे/1/161)

जनकलाड़लीजू में पूर्वराग दर्शनीय है। उन्होंने जबसे देवर्षि नारदजी के द्वारा विवाह-योग्य पति का परिचय सुना है, तबसे वे विरह-व्यथित रहती हैं:-

नारद वचन सुरति करि सीता । रमति राम पद प्रेम पुनीता।।
दिन प्रति विरह-दशा हिय आवै। अन्तर दाह लखी नहिं जावै।।

सकुचि सिया मनहीं मनहिं, सुमिरत निशिदिन राम।
कबहुँ लहे एकान्त जब, प्रकट विरह हिय धाम।।(प्रे/1/164)

उनकी विरह-वेदना शांत करने के लिए जब श्रीचन्द्रकलाजी ने रास नाट्य दिखाया और उसमें प्रीतम प्रभु का दर्शन, संग और वार्ता से उनका विरह उच्चतम दशा को प्राप्त हो जाता है। श्रीकिशोरीजू का चित्त श्रीराम में लीन हो जाता है और श्रीप्रभु का सीय में। दोनों दो स्थानों में दो दिखाई पड़ते हैं परन्तु वे अद्वैत स्वरूप हो जाते हैं। इनका सूक्ष्म दर्शन अपेक्षित है-

<u>प्रीतम का दर्शन-</u>

अन्तःकरण विलीन भे, सखियाँ भई विभोर।
प्रेम दशा अति उच्चतम, सहित सिया रसबोर।।
भये प्रेमवश ब्रह्म विशाला। प्रगटे राम कृतज्ञ कृपाला।।(प्रे/1/169)

<u>प्रीतम का संग-</u>

भयो नृत्य राघव मिलन, रास रंग रसराज।
दरश परश सुख सबहिं लै, सबहिं भई कृतकाज।।(प्रे/1/171)

<u>प्रभु-वार्ता-</u>

सियहिं निरखि प्रभु प्रेम विभोरे । भए मगन छबि सिन्धु हिलोरे।।
प्रभुहि देखि सिय भई सुखारी । निज निधि पाई मनहु तनधारी।।
बोले प्रभु शशिकलहिं सुहाती । पूर्व भई निज धाम जो बाती।।
हम अरु सीता नहिं द्वै जानहु । छिनहु बियोग होय नहिं मानहुँ।।
लीला हेतु वियोग लखाई । सोउ मिटिहि कछु बासर जाई।।
जनक लड़ैती जानतीं, यद्यपि यह सब वात।
तदपि उच्चतम प्रेम सों, विरह हृदय दुखदात।।

<u>विरहाकुलता-</u>

भो चित चेत कछुक छन माहीं । देखे तहाँ न राम लखाहीं।।
मन अधीर विरहाकुल सीता । हृदय राखि प्रभु रूप पुनीता।।

<u>अद्वैत दशा-</u>

रघुवर सिय के प्रेम वश, वनि अन्तः सियरूप।
सिया सनी रस राम के, बनी हृदय नरभूप।।
कैसो यह अद्वैत वर, जानहिं रसिक सुजान।।
एकहिं दुइ बन लसत हैं, दुइ महँ एक लखान।।

श्रीसीतामंत्र के 'श्री ँ' बीज में जो अद्र्धमांत्रा है, उसे चन्द्रबिन्दु कहते हैं अर्थात् चन्द्रमा बिन्दुयुक्त है। यह अद्र्धमात्रा द्वितीया के अद्र्धचन्द्रमा की तरह प्रकाशित, आदरणीय और आहलादकारी है। श्रीसुनयानन्द-वर्द्धिनीजूने प्रकट होकर जो चरित किया है, वह दूज के चाँद की तरह प्रकाशमान, श्रद्धेय और आहलादकारी है। और की बात और, पूर्णकाम परम प्रभु भी इनके रूप, शील, दिव्य गुण, प्रेम का आस्वादन करके इनके वशीभूत ही नहीं दो से एक हो जाते हैं। महर्षि वाल्मीकि के शब्दों में यही श्रीसीताजी का महान चरित है। श्रीप्रेमरामायण (2/35-36) के शब्दों में-

सियहिं पाइ सुखकर घनश्यामा । छन छन नवसुख लहत ललामा।
बने परस्पर इक इक प्राणा । एक आत्म नहिं भेद भुलाना।।
सिय सुख रुचि रघुवर निज माने । तैसहि सिया भाव हिय आने।
लखि रूख राम सुचेष्टित सीता । महाभाव रस प्रेम पुनीता।।
सेवति रामहिं सदा अमानी । मन वच कर्म प्रीति सरसानी।।
शीत सकुच शुचि विनय सुलाजा । उदधि बनी सिय प्रेमहिं छाजा।।
जन्म करम शुचि रहनि शम, शील दया दिवि भाव।
छमा कृपा सिय केर लखि, मगन होत रघुराव।।
सुन्दर सदन सहज सुख रासी । मधुर अनंत सुगन्ध सुभाषी।।
सुठि सुकुमार शरीर कोमला । सौष्ठव लावण सिन्धु शोभला।।
ललित अनंत सिया सरसाई । वरणि न जाय मनोहरताई ।।
दिवि अनंत गुण आकर सीता । किये स्ववस प्रिय पियहि पुनीता।।

***

।। श्री रामः शरणं मम ।।

क्रमांक- 20

(5) बिन्दु-निरूपण

अर्द्धमात्रा के निरूपण में यह कहा गया कि अर्द्धमात्रा, बिन्दु और नाद किसी मंत्र का चतुष्पाद है। जिस प्रकार परब्रह्म पुरुषोत्तम भगवान् श्रीरामचन्द्रजी महाराज की चतुष्पाद विभूति का वर्णन असंभव है, "इदमित्थं" पद से नहीं कहा जा सकता अर्थात् ऐसा ही है, निरूपण नहीं किया जा सकता उसी प्रकार अर्द्धमात्रा, बिन्दु और नाद का भी निरूपण चन्द्रशाखा न्याय से ही किया जा सकता।

अर्द्धमात्रा मात्रातीत है। इसका ज्ञान-निरूपण करने पर भी श्रुतियों ने 'नेति नेति' पद से इसको वाच्य माना। उस अर्द्धमात्रा का ज्ञान बिन्दु से ही होता है। बिन्दु आधेय है, अर्द्धमात्रा आधार। बिन्दु का उत्पादक नाद है। इस प्रकार बिन्दु, अर्द्धमात्रा और नाद का मध्यस्थ तत्व है। बिन्दु, अर्द्धमात्रा का ज्ञान कराता है और नाद को संकेत करता है।

मकार अनुस्वार हो जाता है, ऐसा व्याकरण का नियम है- मोऽनुस्वारः। मकार जीव-वाचक है। मुमुक्षु जीव, जब वैराग्य, उत्साह और गुरुभक्ति इन तीन प्रमुख साधनों के द्वारा भगवत्प्राप्ति कर लेता है तब वह तेजोमय बिन्दु स्वरूप हो जाता है। वह शुद्ध सत्व, आत्मस्वरूप हो जाता है, जिसे 'हंस' पद से वाच्य कहा गया है। तेजोबिन्दूपनिषद् (उपनिषद् अंक, पृ0 668) में कहा गया है कि " आहार को जीतकर अर्थात् मिताहारी होकर, क्रोध को वश में करके, समस्त संगों से तटस्थ होकर, इन्द्रियों पर विजय करके, सुख-दुःखादि द्वंद्वों से रहित होकर, अहंकार को त्यागकर, समस्त आशाओं को छोड़कर एवं संग्रहहीन होकर दूसरों को जो अगम्य है, उसे भी (प्राप्तव्य) प्राप्त करने के दृढ़ निश्चय से युक्त होकर केवल गुरुसेवा का ही प्रयोजन रखने वाला साधक इस ध्यान (बिन्दु पद) का मुख्य अधिकारी है। इस तेजोमय बिन्दु के ध्यान में साधक लोग वैराग्य, उत्साह एवं गुरु-भक्ति ये तीन द्वार (प्रमुख साधन) पार करते हैं। अतः यह हंस (विशुद्ध तत्व) त्रिधामा कहा जाता है।" पुनश्च, "मायिक जगत से परे हृदयाकाश में अवस्थित प्रणव-स्वरूप तेजोमय बिन्दु का ध्यान ही परम ध्यान है। तेजोमय बिन्दु का ध्यान आणव (अत्यंत सूक्ष्म उपाय से साध्य), शांभव (शिवरूपता की प्राप्ति कराने वाला), एवं शाक्त (गुरु की शक्ति से ही साध्य) है। यह ध्यान करने योग्य तेजोबिन्दु परम

गोपनीय एवं अधिष्ठान रूप है। यह सबको प्रतीत न होने के कारण अव्यक्त है, ब्रह्मस्वरूप है। यह तेजोबिन्दु आनन्द-स्वरूप, अध्यात्म-स्वरूप है। वह शून्य न होने पर भी शून्य के समान है और शून्य से परे स्थित है। वह न ध्यान है, न ध्यान करनेवाला है और न ध्येय है तथापि सदा ध्यान करने योग्य अथवा ध्येय स्वरूप है।'' (तेजोबिन्दूपनिषद्, उपनिषद् अंक, पृ0 668)

श्रीरामोत्तर तापनीयोपनिषद् में नाद-बिन्दु को विदेह नन्दिनी श्रीसीता-स्वरूप कहा गया है। प्रणव से अभिन्न होने के कारण ब्रह्मवादी जन उन्हें 'प्रकृति' कहते हैं-

श्रीराम सांनिध्यवशात् जगदानन्द दायिनी
उत्पत्ति स्थिति संहार कारिणी सर्वदेहिनाम्।
सा सीता भवति ज्ञेया मूल प्रकृति संज्ञिका
प्रणवत्वात् प्रकृतिरिति वदन्ति ब्रह्मवादिनः।।

'श्रीँ' बीज का पदच्छेद करते हुए बिन्दु को 'दुःख हरार्थको बिन्दु' कहा गया। जिस आधार श्लोक पर बीज का पदच्छेद किया गया है, उसमें 'अभय-श्रेयसां दात्रीं जीव-रक्षण-तत्पराम्, पद को बिन्दु का वाच्य कहा गया। इस दुःख हरार्थक बिन्दु-स्वरूपा श्रीजू को मातृत्व और पुरुषकार पद प्राप्त हैं।

श्रीसूक्तं (मंत्र 11-12) में ''कमल की माला धारण करने वाली संपूर्ण संसार की माता लक्ष्मी को मेरे वंश में निवास करने की प्रार्थना की गयी है-

''श्रियं वासय मे कुले मातरं पद्ममालिनीम्।''
''नि च देवीं मातरं श्रियं वासय मे कुले।''

जिस प्रकार वचपन में दुधमुँहे बच्चे के लिए माता है, वैसे ही ये अखिल जगत की जननी होकर सबकी अभिलाषाएँ पूर्ण करती हैं। स्तनपायी बालक, माता के न रहने पर भाग्यवश जी भी सकता है परन्तु जगज्जननी के बिना कोई भी जी नहीं सकता। यह बिल्कुल निश्चित है-

यथा माता स्तन्धानां शिशूनां शैशवे सदा।
तथा त्वं सर्वदा माता सर्वेषां सर्वरूपतः।
मातृहीनः स्तनंध्स्तु स च जीवति दैवतः।
त्वया हीनो जनः कोऽपि न जीवत्येव निश्चितम्।।

(देवी भागवत/9/41/63-64)

गोस्वामी जी के वचन संत समाज में मंत्रवत् शिरोधार्य हैं-

(1) जनकसुता जग जननि जानकी । अतिसय प्रिय करुनानिधान की।

ताके जुग पद कमल मनावउँ । जासु कृपा निरमल मति पावउँ।।

(मा/1/18)

(2) उद्भव स्थिति संहार कारिणीं, क्लेश हारिणीम्।
सर्व श्रेयस्करीं सीतां, नतोऽहं रामवल्लभाम्।।

(मा/1/18)

(3) उमा रमा ब्रह्मादि बंदिता । जगदंबा संततमनिंदिता।

(मा/7/24)

'क्लेशहारिणीम्' को निग्रह कहते हैं और 'सर्वश्रेयस्करीं' को अनुग्रह। रोग की निवृत्ति से भी सुख की प्राप्ति होती है। भगवत्प्राप्ति से जीव आनंदमय हो जाता है, जिसका संकेत 'सर्वश्रेयस्करीं' पद है। ये निग्रह और अनुग्रह कार्य जगज्जननी जानकी के हैं और उद्भव-स्थिति-संहार आदिशक्ति-स्वरूपा रामवल्लभाजू के हैं।

श्रीप्रेमरामायण (ज्ञान/152) में स्वयं श्रीजू अपने मातृत्व स्वरूप का उद्घाटन करती हैं-

मेरे हिय महँ बसत नित, अम्ब अनन्तन प्यार।
सन्मुख करि रघुबीर के, करति जीव उद्धार।।
परमाश्रय मैं जीवन केरी। सुखी करहुँ बिन कारन हेरी।।

वैदेही दर्शन (पृ0 21) में आचार्य प्रभु अनुग्रह करते हैं-
"श्रीसीताजी कृपा परवश हो प्रणाम मात्र से प्रसन्न होकर जीवों के कल्याण के लिए सफल प्रयत्न करने की स्वभाववाली हैं। पग-पग में उनके कृपा वैभव का दर्शन द्रष्टव्य है। सद्यः स्वापराधी मारने योग्य जयन्त और राक्षसियों की सुरक्षा जो प्रथम विश्लेष के समय हुई थी, श्रीरामजी को भी आश्चर्यान्वित कर देने वाली सिद्ध हुई है।"

उपदेशामृत (कृपा वैभव,पृ0 69-72) में आचार्य प्रभु के कतिपय सूत्र द्रष्टव्य हैं:-

(4) कृपा का बल, जीव को शिशु के लिए माता के दूध के समान है।

(8) ईश्वर निरपेक्षोपाय है। वह अपनी अहैतुकी कृपा से जीव का उद्धार करने के लिए स्वयं कटिबद्ध है।

पुनः, उपदेशामृत के "श्री जी का वैभव" शीर्षक में आचार्यश्री सूत्ररूप में अनुग्रह करते हैं:-

(17) श्रीजी जगज्जननी हैं। अस्तु जीवों के लिए अनन्त माताओं का प्यार उनके हृदय में समाहित है।

(18) श्रीजी की गोष्ठी (माता मैथि[illegible] का गोष्ठी) ने भगवान् (रामजी) की गोष्ठी को विलज्जित बना दिया है।

(28) प्राण को प्राणित करना तथा जीव को जीवन देना श्रीजी की ही शक्ति का कार्य है।

(29) श्रीजी के आंशिक वैभव से समस्त संसार के श्रीमन्त, श्रीमान् पद पर प्रतिष्ठित हैं।

श्री गुणमंजरीकार ने राक्षसियों और जयन्त के उद्धार का उदाहरण प्रस्तुत करते हुए माता मैथिली की गोष्ठी से श्रीराम की गोष्ठी को लघुतरा कहा है- ''लघुतरा रामस्य गोष्ठीकृता'' उसको अधिकतर स्पष्ट करते हुए आचार्य प्रभु विनय वल्लरी (पद 122) में कहते हैं कि यद्यपि श्रीरघुनन्दन दयासिन्धु हैं फिर भी उन्हें 'तवास्मि इति याचते' की अपेक्षा रहती है लेकिन श्री जानकी जू को इसकी भी जरूरत नहीं है। जयन्त और राक्षसियां इसके प्रमाण हैं:-

मैथिलि कृपा को काह कहिये।
मन वाणी वुधि पार विलक्षण, समुझि हृदय सुख लहिये।
यद्यपि दयासिन्धु रघुनन्दन, तदपि अपेक्षा राखी।।
कहत तवास्मि सकृत याचक कहँ, अभय करन सब साखी।।
रहित अपेक्षा करूणामयि सिय, दुंदुभि गिरा उचारी।
पापी अशुभ बधन के योगू, कैसेहु जीव अनारी।
संत स्वभाव आर्य सत धर्मा, कृपादृष्टि अनुरागी।।
रक्षे तेहि हठि चरित उदारा, नहिं जग कोउ बिन दागी।
आत्म विरोधी दुखद निशिचरी, अपनेहि ते शुचि सीता।
बिनु कछु कहे अभय करि राखी, केवल कृपा पुनीता।।

'श्री ँ' बीज के दुःखहरार्थ बिन्दु की दूसरी दिव्य संपदा है पुरुषकारत्व। 'अभय श्रेयसां दात्रीं जीव रक्षण तत्पराम्' को जो बिन्दु का वाच्य कहा गया वह इसीलिए कि जगज्जननी श्रीजानकीजू अपने वात्सल्य से प्रेरित होकर जीव मात्र को न केवल अभय पद प्रदान करती हैं (क्लेशहारिणीम्) बल्कि श्रीरामजी महाराज को प्राप्त कराकर सर्वश्रेष्ट ब्रह्म पद (सर्वश्रेयस्करीं) प्रदान करती है। श्रीमाताजी, परब्रह्म राम और जीव के बीच में नित्य रूप से स्थित हैं- ब्रह्म जीव बिच माया जैसी। जीव को परब्रह्म की प्राप्ति हेतु सर्व प्रथम माँ जी की शरणागति अनिवार्य है। श्रीमाँजी के द्वारा भगवान् की प्राप्ति कार्य को श्रीजू का पुरुषकार वैभव कहा जाता है।

श्रीआचार्य प्रभु उपदेशामृत (पृ0 82-83) में श्रीजू के इस वैभव का सूत्ररूप में संकेत करते हैः-

(1) संसारी जीवों को भगवत्प्राप्ति, श्रीजू को पुरुषकार रूप में वरण करने से होती है।

(2) भगवान् भी श्रीजी के पुरुषकारत्व की अपेक्षा रखते हैं।

(3) श्रीजी के कृपा कटाक्ष के बिना जीव को भौतिक ऐश्वर्य, आत्मदर्शन और भगवत्प्राप्ति स्वप्न में भी संभव नहीं होती।

(12) 'श्री' शब्द की श्रयते और श्रीयते व्युत्पत्तियों के अनुसार श्री जी आश्रयण करती हैं और आश्रयण की जाती हैं अर्थात् जीवों का कल्याण करने के लिए भगवत् आश्रयण आपको नित्यापेक्षित है तथा जीवों को नित्य अपने चरणों में आश्रय देना भी जीवों के कल्याण के लिए ही आपको सहजापेक्षित है।

आचार्य प्रभु प्रपत्ति दर्शन में श्रीजू के पुरुषकार वैभव का विस्तार-पूर्वक निरूपण (सूत्र 13-21) करते हुए अंततः उन्हें प्रभु-प्राप्ति का एकमात्र उपाय-स्वरूप घोषित करते हैं- उपायस्य स्वरूपो सीतावत् (सूत्र 219)।

श्रीनारद पांचरात्र का वचन आचार्य प्रभु उद्धृत (प्रपत्ति द0, पृ0 19) करते हैं-

मत्प्राप्तिं प्रति जन्तूनां संसारे पततामधः,
लक्ष्मीः पुरुषकारत्वे निर्दिष्टा परमर्षिभिः ।

अर्थात् ऋषियों ने संसार-सागर में पतित जीव को भगवत्प्राप्ति हेतु श्रीजू का पुरुषकार अपेक्षित माना है।

श्रीजू ईश्वर को स्व सौन्दर्य से और जीव को अपनी अहैतुकी कृपा से वश में करके पुरुषकार करती हैः-

ईश्वरं (रामं) स्वदेह वैभवेन, जीवं कृपया च

(प्रपत्ति दर्शन, सूत्र 18)

आचार्य प्रभु विश्वकोष का निम्न श्लोक उद्धृत करते हुए उक्त सूत्र की स्वयं व्याख्या इस प्रकार करते हैंः-

सिनोत्यति गुणैः कान्तं मूलं सीयते तद् गुणैस्तु या।
वात्सल्यादि गुणैः पूर्णा तां सीतां प्रणतोस्म्यहम् ।

श्री विदेह वंश बैजयन्ती जी अपने शरीर के अपार सौन्दर्य से परमेश्वर को वश में करके जीव को अपनाकर स्वसेवा प्रदान करने एवं सर्वविधि कल्याण करके उसको सच्चा सुखी बनाने की चेष्टा में प्रभु को लगाती हैं। 7अस्तु, परब्रह्म पुरूषोत्तम भगवान्

श्रीरामजी अपनी स्वरूपा शक्ति से प्रेरित हो अपने सर्व लोक शारण्यं नाम के विरद की रक्षा में अहर्निश तत्पर रहते हैं।

जब जीव, श्रीसीताजी के उपदेश को अकर्ण करके पुरुषोत्तम भगवान श्रीरामजी की शरण ग्रहण नहीं करता तो अपनी अहैतुकी कृपा के बल से प्रभु-सन्मुख करने का प्रयास 'श्री' जी करती हैं। जिससे जीव किसी-न-किसी ब्याज से ईश्वर की शरण ग्रहण करता ही है।

श्रीप्रेमरामायण (ज्ञा/126) में श्रीप्रभु के वचन हैं:-

करुणाकरी सिया सुखकारी । मम आश्रित दुख दलन दुलारी।।
सब अपराध क्षमा करवाई । जिव हित कोटिन करै उपाई।।
सतत जीव कहँ सो विनु हेतू । आनँद दानि अतिहि चित चेतू।।
मम पद प्रीति बढ़ाय किशोरी । देत जनहिं रससिन्धु हिलोरी।।
ता बिन जीव न पावहीं, नेकहु मम कृप कोर।
ताते जन सेवहिं सियहिं, यथा हमहिं रसबोर।।

प्रपत्ति प्रभा (श्लोक 1-3) में श्रीसीताजी की प्रार्थना इसी रूप में की गयी है-

हे! सीते करुणार्णवे धरणिजे हे! हे! कृपाविग्रहे।
हे! श्रीः पुरुषकार वैभवयुते, हे! हे! दयासागरे।
हे! रामे रघुनाथ पाद निकटे निक्षेप्य मां शोभने,
रामं प्रार्थय त्वं सदा पतिप्रिये हे! हे! रमे रक्ष माम्।।

इस प्रकार स्पष्ट होता है कि श्रीसीतामंत्र के बीज में जो बिन्दु है. वह जीव मात्र की रक्षा, अभय और सर्वश्रेष्ठ ब्रह्मपद प्रदान करने का वाचक है। मातृत्व और वात्सल्य से प्रेरित होकर श्रीजू जीवमात्र के क्लेश (अविद्या, अस्मिता, राग. द्वेष और अभिनिवेश नामक पंच क्लेश) दूर कर अभय करती हैं तथा पुरुषकार वैभव द्वारा परब्रह्म पुरुषोत्तम भगवान श्रीरामचन्द्रजी महाराज को प्राप्त कराकर सर्वश्रेष्ट ब्रह्मपद प्रदान करती हैं। अतः बिन्दु दुःखहरार्थक सिद्ध होता है।

***

।। श्री रामः शरणं मम ।।

क्रमांक- 21

(6) नाद-निरूपण

अमृत नादोपनिषद् (उपनिषद् अंक, पृ0 674) में कहा गया है कि "प्राणायाम द्वारा पाप राशि का नाश करके पहले बताये हुए (अकार, उकार, मकार, बिन्दु तथा नाद रूप) प्रणव मंत्र का ध्यान करे अर्थात् प्रणव की प्रत्येक मात्रा के साथ उसके लोक, गुण एवं अधिदेवता का चिंतन करते हुए प्राणायाम करे। यह प्रणव नामक घोष वाह्य प्रयत्न से उच्चारित होनेवाला नहीं है। यह व्यंजन नहीं है। यह स्वर भी नहीं है। कंठ, तालु, ओष्ठ और नासिका से उच्चारित होनेवाला (सानुनासिक) भी नहीं है। यह वह अक्षर है, जो कभी क्षरित नहीं होता अर्थात् यह नाद के अव्यक्त रूप से नित्य प्रकृति में विद्यमान रहता है। कहने का तात्पर्य यह है कि प्रणव का प्राणायाम के रूप में तो उपर्युक्त प्रकार से समयादि संयम से अभ्यास करना चाहिए और निरन्तर नाद के रूप में मन को उसमें लगाये रहना चाहिए।"

नादबिन्दूपनिषद् (उपनिषद् अंक, पृ0 672) में कहा गया है कि " ब्रह्मस्वरूप प्रणव में संलग्न नाद ज्योतिः-स्वरूप होता है, उसमें मन लय को प्राप्त होता है यही भगवान् .विष्णु का परम पद है। निःशब्द नाद, को ही परम पद कहते हैं। जब निरन्तर नाद का अनुसंधान करने से वासनाएं सम्यक् रूप से क्षीण हो जाती हैं, तब मन और प्राण निःसंदेह निराकार ब्रह्म में लीन हो जाते हैं। कोटि-कोटि नाद और कोटि-कोटि बिन्दु ब्रह्मप्रणव-नाद में लीन हो जाते हैं। ब्रह्म और प्रणव की एकता के चिन्तन से नादरूप में ज्योतिर्मय, शिवस्वरूप परमात्मा का आविर्भाव होता है - ठीक वैसे ही जैसे मेघ के दूर हो जाने पर सूर्यनारायण प्रकाशित हो उठते हैं। अभ्यास में लाया हुआ नाद वाह्य ध्वनियों को आवृत्त कर लेता है। इस प्रकार, एक पक्ष अर्थात् अकार को जीतकर दूसरे पक्ष उकार को जीते और क्रमशः संपूर्ण प्रणव पर विजय प्राप्त कर तुर्यपद अर्थात् आत्मसाक्षात्कार प्राप्त करे।

ध्यान बिन्दूपनिषद् (उपनिषद् अंक, पृ0 667) में कहा गया है के " प्रणव रूप में अकारादि तीन अक्षरों वाले, उसी रूप में अकार, उकार, मकार-इन तीन मात्राओं वाले तथा उनमें व्याप्त अर्द्धमात्रा स्वरूप जो परमात्मा हैं, उनको जो जानता है, वही वेद के तात्पर्य का ज्ञाता है। तेल की धारा के समान अविच्छिन्न, घंटे की अनुरणन रूप ध्वनि के समान दीर्घकाल तक ध्वनित होनेवाला तथा बिना वाणी के (प्राणों द्वारा ही) उच्चरित

बिन्दु-पर्यन्त प्रणव के बाद प्रकट होने वाले, नाद को जो जानता है, वही वेदों को ठीक जानता है।''

नाद के अनेक प्रकारों का निरूपण करते हुए कहा गया है कि (नादबिन्दूपनिषद्, उपनिषद् अंक, पृ0 671)- '' अभ्यास के प्रारंभ में यह नाद बहुत जोर-जोर से और नाना प्रकार से सुनायी देता है और अभ्यास के बढ़ जाने पर वह सूक्ष्म से सूक्ष्मतर रूप में सुनायी पड़ता है प्रारम्भ में समुद्र, बादल, भेरी तथा झरनों से उत्पन्न ध्वनि के समान एवं मृदंग, घंटे तथा नगारे की ध्वनि के समान वह नाद सुनायी देता है और अंत में किंकिणी, वंशी, वीणा तथा भ्रमर की ध्वनि के समान मधुर नाद सुनाई पड़ता है। इस प्रकार सूक्ष्म से सूक्ष्म होते हुए नाना प्रकार के नाद सुनाई पड़ते हैं'' नाद के द्वारा मन के वशीभूत होने का निरूपण करते हुए इसी उपनिषद् में आगे कहा गया है कि '' जिस प्रकार पुष्परस का पान करता हुआ भ्रमर पुष्पगंध की अपेक्षा नहीं करता, उसी प्रकार नाद में सदा आसक्त रहने वाला चित्त विषयों की आकांक्षा नहीं करता। यह चित्तरूपीआन्तरिक सर्प नाद को ग्रहण करने पर उस सुन्दर नाद की सुगन्ध से बँधकर तत्काल सारी चपलताओं का परित्याग कर देता है। फिर संसार को भूलकर और एकाग्र होकर इधर-उधर कहीं नहीं दौड़ता। विषयों के उद्यान में विचरनेवाले मनरूपी मतवाले हाथी को वशीभूत करने में यह नादरूपी तीक्ष्ण अंकुश ही समर्थ होता है। यह नाद मनरूपी मृग को बाँधने में जाल का काम करता है। मनरूपी तरंग को रोकने में तट का काम करता है।''

नाद श्रीजू की परा वाणी है। परा, पश्यन्ती, मध्यमा और वैखरी, ये चार पाद वाणी के कहे गए हैं। उच्चरित और श्रुत वर्ण (शब्द अथवा भाषा) वैखरी वाणी है। उस का अर्थ (रूप) समुदाय मध्यमा वाणी है। उस रूप में लग्न रससिक्त मन पश्यन्ती वाणी है। ये तीनों जहाँ से स्फुरित और प्राणित होते हैं, वह परा वाणी, जो छन्द के झंकार की भाँति नाद रूपा है। गोस्वामी जी ने मानस के प्रथम मंगलाचरण में वर्ण, अर्थ, रस और छन्द के रूप में वाणी के इन्हीं चार पादों का संकेत किया है-

वर्णानां अर्थसंघानां रसानां छन्दसामपि।
मंगलानां च कर्त्तारौ वन्दे वाणी विनायकौ।

(मा/1/मं0/1)

केवल शब्द की ही प्रतिध्वनि नहीं होती बल्कि रूप, रस, गंध और स्पर्श की भी प्रतिध्वनि मन में होती है, जिसकी झंकार चिदाकाश में अनहद नाद के रूप में निनादित होती है। जिस प्रकार घंटा बजने के बाद अर्थात् घंटा नहीं बजते हुए भी आकाश में

एक अनुरणन ध्वनि सुनाई पड़ती है, उसी प्रकार जिस रूप, रस, गन्ध और स्पर्श में मन आसक्त हो जाता है, उसके अभाव में भी इनकी जो ध्वनि चिदाकाश में सुनाई पड़ती है, वही नाद पुनः सृष्टि अर्थात् पुनर्जन्म का मूलकारण होता है। इसीलिए श्रुतिभगवती यह अनुग्रह करती हैं कि किसी जागतिक, भौतिक, विनाशशील शब्द, स्पर्श, रूप, रस, गंध के नाद से चित्त को मुक्त कर मंत्रनाद, प्रणवनाद से युक्त कर दो जिनके फलस्वरूप 'पुनरपि जननं पुनरपि मरणं पुनरपि जननी जठरे शयनं' का चक्र सदा-सदा के लिए छूट जायगा। शब्देतर विषयों रूप, रस, स्पर्शादि को मंत्रदाता और मंत्रदेवत के प्रति युक्त कर देना चाहिए। मंत्र, मंत्रदाता और मंत्रदेवता की त्रिपुटी भंग करके एक में तीनों को देखने का अभ्यास करना चाहिए। अर्थात् मंत्र में देवता और दाता, मंत्रदाता में मंत्र और देवता तथा मंत्रदेवता में मंत्रदाता और मंत्र की एकता से इस त्रिपुटी का भेदन होता है। इस प्रकार, मंत्रनाद का अनुसंधान करते रहने से अन्य सभी नाद रहते हुए भी नष्टप्राय मृतकवत् हो जाते हैं- मणि लिए फनी जिए व्याकुल बिहाले रे।

श्रीसीतोपनिषद् (उपनिषद् अंक, पृ0 658-59) में नाद से बिन्दु और बिन्दु से ॐकार और ॐकार से तीन वेद, छःह वेदांग आदि की सृष्टि बतलायी गयी है। यह सब सृष्टि श्रीसीताजी की क्रियाशक्ति का परिणाम है, जो भगवती के संकल्प मात्र से प्रकट होती है। संक्षेप में इस उपनिषद् के शब्द हैं, ''श्रीसीताजी का क्रियाशक्ति-रूप श्रीहरि-मुख-नाद के रूप में व्यक्त हुआ। उस नाद से बिन्दु प्रकट हुआ। बिन्दु से ॐकार का आविर्भाव हुआ। जो सनातन ब्रह्ममय रूपधारिणी क्रियाशक्ति है, वह भगवान् की साक्षात् शक्ति है। भगवान् के स्मरण मात्र (संकल्प मात्र) से वे जगत् के रूपों को प्रकट करती तथा दृश्य जगत में स्वयं व्यक्त होती हैं।''

श्रीसीतामंत्र का पदच्छेद करते हुए नाद को जगत-सृष्टि कारक कहा गया- 'नादो विश्व प्रसूः स्मृतः'। पुनः श्रीप्रेमरामायण (1/7-8 मंगल श्लोक) के जिस आधार-श्लोक पर श्रीँ बीज का अर्थ किया गया है, उसमें नाद का वाच्य 'ब्रह्माण्डानन्त कारिणीम्' पद को माना गया है। अतः ब्रह्माण्डानन्त कारक रूप में नाद का निरूपण किया जा रहा है।

शिवपुराण (वा0उ0,अ04) के अनुसार चिद्रूपा पराशक्ति 'प्रसवधर्मिणी' है अर्थात् शिव की इच्छा से विभाग-पूर्वक नाना प्रकार के विश्व की रचना करने वाली है। वह शक्ति 'मूल प्रकृति', 'माया' एवं 'त्रिगुणा'- इस प्रकार त्रिधा कही जाती है-

सैका परा च चिद्रूपा शक्तिः प्रसवधर्मिणी।
विभज्य बहुधा विश्वं विदधाति शिवेच्छंया।।
सा मूल प्रकृतिर्माया त्रिगुणा च त्रिधा स्मृता।।

पुनः, यहीं उल्लेख है कि शरीर भेद से शक्ति के बहुत से भेद कहे गये हैं। रूद्र की शक्ति 'रौद्री', विष्णु की शक्ति वैष्णवी, ब्रह्मा कीब्रह्माणी, इन्द्र की इन्द्राणी (शची) आदि एक ही महाशक्ति के अनेक भेद हैं-

शरीरांतर भेदेन शक्ति भेदाः प्रकीर्तिताः।
नानारूपास्तु विज्ञेयाः स्थूल सूक्ष्म विभेदतः।।
रुद्रस्य रौद्री सा शक्तिर्विष्णोर्वे वैष्णवी मता।
ब्रह्माणी ब्रह्मणः प्रोक्ता चेन्द्रस्य ऐन्द्रीति कथ्यते।।(शि0पु0)

ब्रह्मवैवर्त्तपुराण (गणपति खण्ड, अ.7/70) में कहा गया है कि जिस प्रकार मिट्टी के बिना कुंभकार घड़ा बनाने में और स्वर्ण के बिना स्वर्णकार कुण्डलादि आभूषण बनाने में असमर्थ है उसी प्रकार शक्ति के बिना मैं (शिव) सृष्टि निर्माण नहीं कर सकता-

मृदा बिना घटं कर्त्तुं कुलालश्च यथाक्षमः।
बिना स्वर्णं स्वर्णकारः कुण्डलं कर्त्तुमक्षमः।।
बिना शक्त्या तथाऽहं च स्वसृष्टिं कर्त्तुमक्षमः।।

मार्कण्डेय पुराण (अ0 82/92) में कहा गया है कि ब्रह्माणी, वैष्णवी और माहेश्वरी, इन तीन शक्तियों में वह जैसे ब्रह्म-माया है वैसे शिव-माया और विष्णु-माया भी। परन्तु, शास्त्रों में उसे मुख्यतः 'विष्णु माया' ही कहा गया है क्योंकि सृष्टि के आरंभ से लेकर प्रलय के अंत तक जीव संसार की पालिनी शक्ति के अधीन रहता है, जो विष्णु के अधीनस्थ है-

या देवी सर्वभूतेषु विष्णु मायेति शब्दिता।
नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमो नमः।।

आद्या शक्ति ही अपने रजोगुण रूप से संसार की सृष्टि करती है, सत्वगुण रूप से उसका पालन करती है और तमोगुण रूप से संहार करती है। इस प्रकार वह त्रिगुणात्मिका है-

सृजते या रजोरूपा सत्त्वरूपा च पालने।
संहारे च तमोरूपा त्रिगुणा सा सदा मता।।(देवीभागवत/3/24/37)

आद्या शक्ति के निर्गुण और सगुण दो रूप हैं। निर्गुण रूप तो योगियों के लिए भी अगम्य है अतः सगुणा 'सुखसेव्या' है। संहार के अभाव में अर्थात् युगारंभ में वह निर्गुणा कहलाती है। उस समय वह न स्त्री है, न पुरूष और न नपुंसक। बाद यही सगुण होकर सृष्टि करती है। (देवीभागवत/3/30/33-34)

आचार्य प्रभु विनयवल्लरी (पद 116) में कहते हैं-

जय जानकी जनक-जाता जग जननि,
जयति जन हित जन्मि लीला-कारिणी।
भ्रू-विलास किंचित् कटाक्ष,
अंड उदय स्थिति विलय स्वेच्छा सुचारिणी।।

श्रीप्रेमरामायण (2/308) में सद्गुरुदेव श्रीयाज्ञवल्क्य जी महाराज श्रीसीतातत्व का उपदेश करते हुए कहते हैं:-

उद्भव पालन प्रलय कारिणी । आनंदमय नित रूप धारिणी।।
क्लेश हरणि सर्वश्रेय प्रदायिनि । सत चित रूप राम मन भायिनि।।
स्ववश विहारिणि रसमय रूपा । रसभोगी रसदानि अनूपा।।
घट घट वास करति अनुरागी । प्रीति पुनीत जीव के लागी।।
ब्रह्मा विष्णु महेश सब, निज निज शक्ति समेत।
करै जगत कर कार्य बड़, जेहि बल निज चित चेत ।।

सृष्टि कारिणी सीता का निरूपण इसके पूर्व क्रमांक 7 स्वरूपा शक्ति मूलक शकार, क्रमांक 8 देवशक्ति मूलक शकार और क्रमांक 18 ईकारार्थ निरूपण में किया जा चुका है।

***

।। श्री रामः शरणं मम ।।

क्रमांक- 22 'श्री ँ' बीज का शेष मंत्र में विस्तार

क्रमांक 4 ''श्रीसीतामंत्र का पदच्छेद'' शीर्षक में कहा गया है कि ''श्रीसीतामंत्र के प्रथम पद 'श्री ँ' को बीज कहते हैं। जिस प्रकार बीज में संपूर्ण वृक्ष स्थित रहता है, उसी प्रकार बीजाक्षर में शेषमंत्र स्थित रहता है। जिस प्रकार बीज का विस्तार वृक्ष होता है, उसी प्रकार बीजाक्षर का विस्तार शेष मंत्र होता है, जिसे मंत्र निरूपण में ''विवरण'' कहते हैं।

हमारे सामने 'श्री ँ' बीज के विवरण-प्रतिपादन हेतु कोई लिखित शास्त्र प्रमाण उपलब्ध नहीं है। श्रुति-शास्त्र की शरण ही दास की लेखनी का आधार रही है। इसलिए हृदय हताश सा है। मंत्र, परब्रह्म का निर्गुण शब्द रुप है, जहां मन समेत वाणी का प्रवेश नहीं है। वह तर्क का विषय नहीं है। अनुमान से लोग कुछ कहते हैं, वह प्रमाण नहीं होता। शब्द ब्रह्म की महिमा का निरूपण वेद नेति नेति शब्दों के द्वारा ही करते हैं-

व्यापकु ब्रह्मु अलख अविनासी । चिदानंदु निरगुन गुनरासी।।
मन समेत जेहि जान न बानी । तरकि न सकहिं सकल अनुमानी।।
महिमा निगम नेति कहि कहई । जो तिहुँ काल एकरस रहई।।

एकमात्र आचार्य-चरणारविन्द का सहारा है, जिनके दक्षिण पगतल में उर्ध्वरेखा आर-पार अंकित है। उन्होंने अहैतुकी कृपा से अपने स्वरूप का किंचित बोध कराया है। अतः श्रीसिद्धि सदन विहारिणी-विहारीजू की ज्ञानमुद्रा का दर्शन करते हुए दास कुछ लिखने का साहस कर रहा है। मंत्रनिष्ठ संतवृन्द त्रुटियों को सुधार कर बालक की तुतली बोली के समान ग्रहण करने की कृपा करेंगे।

'श्री ँ' बीज के जिन छःह अंगों का निरूपण उपर्युक्त 21 क्रमांको के अन्तर्गत अल्प बुद्धि के द्वारा किया गया है, उन्हीं का विस्तार शेष मंत्र के छःह अंगों में प्रतीत होता है।

षडक्षर श्रीराम मंत्र में विवरण-प्रतिपादन करते हुए संतों ने कहा है कि राँ बीज के बाद ''रामाय नमः'' ये पाँच अक्षर हैं, ये 'राँ' बीज के विवरण रूप हैं। जैसे 'र' कार का विवरण 'रामाय' का राम पद है, मकार का विघरण 'रामाय' में 'आय'

चतुर्थी विभक्ति है तथा अकार का विवरण 'नमः' पद है। इसी प्रकार, श्रीसीतामंत्र में 'श्रीँ' बीज के बाद 'सीतयै स्वाहा या नमः' ये पाँच अक्षर हैं। सखण्ड स्वाहा अथवा नमः के अनुसार 'स्वा' और 'हा' अथवा 'न' और मः - छःह अक्षर होते हैं। 'श्रीँ' बीज के छःह तत्व शेष मंत्र में इस प्रकार विस्तृत हैं।

'श्रीँ' बीज का शकार, 'सीतायै' पद में 'सी', रकार 'ता' और ईकार, चतुर्थी विभक्ति 'यै' रूप में प्रतीत होता है। 'श्रीँ' बीज में पूर्व निरूपित बिन्दु, स्वाहा अथवा नमः (अखण्ड) है। सखण्ड 'स्वा' और 'हा' अथवा 'न' और 'मः' क्रमशः अर्द्धमात्रा तथा नाद के विस्तृत रूप हैं। पूर्व में ईकार को श्रीविदेहराज और श्री लक्ष्मीनिधिजी महाराज का वाचक माना गया है। साथ-साथ, ईकार-निरूपण (क्रमांक 3) में श्रीसीताजी की अंशजा अनुजाओं का वर्णन किया गया है। इनके प्राकट्य का एक मात्र प्रयोजन है- 'सिय सेवा हित तन-मन धीरति। ईकार का अर्थ अनन्य है, अर्थात् संपूर्ण माता, पिता, भ्राता-भाभी-भगिनी तथा अन्य मिथिलावासी शकार-रूपा श्रीसीताजी और रकार-वाच्य श्रीरामजी महाराज के ही शेष, भोगय और रक्ष्य हैं। इस प्रकार, 'श्रीँ सीतायै स्वाहा (नमः)' मंत्र से प्रकट मंत्र-देवता मिथिला विहारिणी विहारीं जू हैं, जो अपने मिथिलावासी सकल परिकरों से आवृत्त हैं। इनके ध्यान का आचार्य प्रदत्त श्लोक इस प्रकार है-

दिव्य वेषधरं रामं ब्याह भूषण भूषितम्।
मैथि मण्डप मध्यस्थं सीतया सह शोभितम्।।
ब्रह्मा विष्णु महेशां च मोहयन्तं मनोहरम्।
वन्दे वेदान्त सिद्धान्तं परब्रह्म रसाम्बुधिम्।।

***

।। श्री रामः शरणं मम ।।

क्रमांक- 23

द्वितीय पदार्थ निरूपण

श्रीसीतामंत्र का द्वितीय पद 'सीतायै' है। प्रथम पद 'श्री ँ' बीज श्रीविदेहराज नन्दिनीजू का पर स्वरूप है और शेष मंत्र अवर स्वरूप। पुनश्च, अर्थ पंचक की दृष्टि से विचार करने पर 'श्री ँ'बीज पर स्वरूप, 'सीता' स्व स्वरूप, सीतायै पद की चतुर्थी विभक्ति 'यै' फलस्वरूप, 'स्वाहा' अथवा नमः (अखण्ड) उपाय स्वरूप और सखण्ड स्वा और हा अथवा 'न' और 'मः' विरोधी स्वरूप है।

'सीता' शब्द 'सि बन्धने' धातु में 'क्त' प्रत्यय लगने से बनता है। अपने सौन्दर्य-माधुर्यादि दिव्य गुणों से जिन्होंने परब्रह्म पुरुषोत्तम श्रीरामभद्रजू को भी बशीभूत करके श्रीअयोध्या में प्रकट होने के लिए विवश कर दिया, उन्हीं का नाम सीता है। आचार्य प्रभु विनय वल्लरी (पद 131) में कहते हैं-

ऐसो सीय दीन हितकारी।

करुणा कृपा क्षमा गुण सागरि, शील सदन सुख सारिनि।
दया रूपिणी सहज दयावश, द्रवति रहति उपकारिणि।।
रामहि प्रेरि अवध प्रगटाई, जनकपुरी वपु धारिणि।
सो केवल परहित के लागी, स्वेच्छा स्ववश विहारिणि।।

'सीता' नाम केवल हल जोतने के समय प्रकट होने से ही नहीं है। यह तो 'राम' नाम की तरह अनादि है। मनुशतरूपा को जब परात्पर प्रभु ने श्रीसीता-सहित राम रूप में दर्शन प्रदान किया उस समय दशरथ जी का ही जन्म नहीं हुआ था तो राम के अवतार का प्रश्न कहाँ उठता है? मनुशतरूपा को वेदवेद्य ब्रह्म के साक्षात्कार की अभिलाषा थी-

उर अभिलाष निरंतर होई । देखिअ नयन परम प्रभु सोई।।
अगुन अखंड अनंत अनादी । जेहिं चिंतहिं परमारथ वादी।।
नेति नेति जेहि वेद निरूपा । निजानंद निरुपाधि अनूपा।।
ऐसेउ प्रभु सेवक बस अहई । भगत हेतु लीलातनु गहई।।
जौ यह वचन सत्य श्रुति भाषा । तौ हमार पूजिहि अभिलाषा।।

(मा/1/144)

भक्तवत्सल कृपानिधान प्रभु ने प्रकट होकर उन्हें जो दर्शन दिया, वे आदिशक्ति श्रीसीताजी के साथ थे-

बाम भाग सोभति अनुकूला । आदिशक्ति छबि निधि जगमूला।
जासु अंश उपजहिं गुनखानी । अगनित लच्छि उमा ब्रह्मानी।।
भृकुटि बिलास जासु जग होई । राम बाम दिसि सीता सोई।।(मा/1/148)

श्रीसीतोपनिषद् (उपनिषद् अंक, पृ0 657-58) के अनुसार 'सीता' यह उनका नामात्मक रूप तीन वर्णों का है और वे साक्षात् योगमाया-स्वरूपा हैं। 'सकार' सत्य, अमृत, प्राप्ति (सर्वत्र गमन की शक्ति को प्राप्ति कहते हैं, जो अष्ट सिद्धि के अन्तर्गत आती है), एवं चन्द्र का वाचक है। दीर्घरूप मात्रायुक्त तकार महालक्ष्मी का स्वरूप, प्रकाशमय, एवं विस्तारकारी (जगत् स्रष्टा) कहा गया है। वे 'ईकार'-रूपिणी अव्यक्तरूपा महामाया अपने चन्द्रनिभ अमृतमय अवयवों एवं दिव्य अलंकार, माला, मुक्तामालादि आभूषणों से अलंकृत स्वरूप में व्यक्त होती हैं। उनके तीन स्वरूप हैं, जिनमें प्रथम स्वरूप से वे शब्दब्रह्ममयी हैं। वे बुद्धिस्वरूपा स्वाध्याय-काल में प्रसन्न होने पर बोध को प्रकट करती हैं। अपने दूसरे स्वरूप में वे पृथ्वी पर महाराज सीरध्वज जनक की यज्ञभूमि में हलाग्र से उत्पन्न हुईं। अपने तीसरे स्वरूप में वे 'ईकार' रूपिणी अव्यक्त-स्वरूपा रहती हैं। इन्हीं तीनों रूपों को सीता कहा जाता है।

आदिकाव्य श्रीमद् वाल्मीकीय रामायण(1/66/13-15) में विदेहराज श्रीजनक जी महाराज श्रीविश्वामित्र एवं श्रीराम-लक्ष्मण जी के समक्ष अपनी गाथा बताते हुए कहते हैं कि 'एक दिन मैं यज्ञ के लिए भूमि-शोधन करते समय खेत में हल चला रहा था। उसी समय हल के अग्रभाग से जोती गयी भूमि (हराई या सीता) से एक कन्या प्रकट हुई। सीता (हलद्वारा खींची गयी रेखा) से उत्पन्न होने के कारण उसका नाम सीता रखा गया। पृथ्वी से प्रकट हुई वह मेरी कन्या क्रमशः बढ़कर सयानी हुई। अपनी इस अयोनिजा कन्या के विषय में मैने यह निश्चय किया है कि जो अपने पराक्रम से इस धनुष को चढ़ा देगा, उसी के साथ ब्याह करूँगा। इस तरह इसे वीर्य-शुल्का (पराक्रम रूपी शुल्क वाली) बनाकर अपने घर में रख छोड़ा है-

अथ में कृषतः क्षेत्र लांगलादुत्थिता ततः।
क्षेत्रं शोधयता लब्धा नाम्ना सीतेति विश्रुता।।
भूतलादुत्थिता सा तु व्यवर्धन ममात्मजा।।
वीर्यशुल्केति मम कन्या स्थापितेयमयोनिजा।
भूतलादुत्थितां तां तु वर्धमानां ममात्मजाम्।।

इसका अनुमोदन विष्णुपुराण (अंश 4, अ05, श्लोक28) और आनन्द रामायण (सारकाण्ड/3/74) में भी किया गया है-

विष्णुपुराण- कृषतः सीरे सीता दुहिता समुत्पन्ना।

आनन्द रामायण- सीराग्रनिर्गता यस्मात् सीतेत्यत्र गीयते।

श्रीप्रेमरामायण (1/129-30) में जो जनक-लाडिलीजू के दिव्य प्राकट्य का वर्णन किया गया है, उसका उल्लेख हम क्रमांक (10) श्रीसीतामूलक शकार के अन्तर्गत कर चुके हैं।

वैदेही दर्शन (पृ0 13) में श्रीस्वामीजी श्रीजनक-तनया के आधिभौतिक स्वरूप का निरूपण करते हुए अनुग्रह करते हैं कि " यथार्थतः सीता शब्द सुख का जन्म स्थान है। इसके उच्चारण व स्मरण मात्र से कितने आत्यन्तिक आनन्द की अनुभूति होती है, इसका सच्चा अनुभव वास्तविक रूप से श्रीसीताकान्त रघुनन्दन रामजी को ही है किन्तु कहने में वे भी असमर्थ हैं क्योंकि वह आनन्द, अनन्त और अनिर्वचनीय है। श्रीसीताजी के जन्म-कर्म दिव्याति दिव्य हैं। देह में रहते हुए भी बिना देह की दशा (आत्मस्वरूप) में स्थित रहनेवाले श्रीविदेहराज सीरध्वज जी को अपना पितृ पद प्रदान करने के कारण श्रीसीताजी वैदेही नाम से प्रख्यात हुईं। श्री वैदेही जी अयोनिजा हैं। निर्गुण-निराकार का बोध सगुण-साकार से ही सर्वथा संभव है। यह दर्शन दर्शकों के हृदय पटल पर दृढ़ांकित करने के लिए आप श्रीविदेहराजजी की यज्ञ-स्थली में भूमि से प्रकट हुईं। इसीलिए आपका एक नाम भूमिजा भी है। पृथ्वी सेएक दिव्य सिंहासन, सूर्य को तिरस्कृत करता हुआ प्रादुर्भूत हुआ, जिसे शेष अपने शिर पर धारण किए थे। श्रीसीताजी उसी सिंहासन पर आसीन दिव्य तेज से देदीप्यमान धरणी देवी के क्रोड़ में विराजित अपनी आभा से दशो दिशाओं को आभासित कर रही थीं। शत-शत सूर्य और चन्द्र विलज्जित हो रहे थे। नित्य द्वादशाब्द वयसा श्रीभूमि-नन्दिनीजू की काय संपत्ति असमोर्ध्व अनन्त और अनिर्वचनीय थी। सौन्दर्य, माधुर्य, सौकुमार्य, सौष्ठव, लावण्य, लालित्य और मोहकत्वादि वैभव अपना-अपना स्वरूप-धारण करके श्रीवैदेहीजू की नख-ज्योत्स्ना को अपनी जननी जानकर बार-बार प्रणिपात कर रहे थे।"

नाम की दृष्टि से 'सीता' नाम श्रीजनक दुलारी जू का वाच्य है लेकिन मंत्र- विवरण की दृष्टि से सीता का 'ता' तारक ब्रह्म श्रीरामचन्द्र जी महाराज जी का वाचक है। 'रकारो राम उच्यते' पदच्छेद करते समय क्रमांक (4) में कहा गया है और क्रमांक (22) में 'रकार' का विस्तार 'ता' (सीता का ता) कहा गया। अतः मंत्रार्थ की

दृष्टि से सीता पद का अर्थ है युगल दुलहा-दुलहिन सरकार। विनयवल्लरी (पद 129) में आचार्य प्रभु 'ता' के तारकत्व का संकेत करते हैं-

भजु मन सिया नाम सुखदायी।
सीता सीता मधुर मधुर जपि, राम दरश शिव पाई।
'सी' सुख वर्धन, 'ता' भव तारक, अमृत स्वाद सुहाई।
'सी' कहतहिं सिय जन वश होवहिं, ता सुनि भान भुलाई।।
रामहि सौपि नाम निज जापक, अभय करहिं चित चाई।।
हर्षण नाम सुधा अस पी पी, जियत जगत भल भाई।।

मिथिला विवाह-मण्डप में श्रीरघुनन्दन दुलहा सरकार के चरण-कमल पखारते समय महाराज जनकजी को तत्काल दिव्य नित्य परा अयोध्या में चरण पखारते हुए का दर्शन हुआ-

मुदित पखारत पाद, रघुकुल मणि वर वेष के।
जनक हृदय अहलाद, देखत युगल किशोर कहँ।।
धोवतहिं पाद जनक जिय जाई । स्मृति शुभ साकेत सुहाई।
निरखत नृप मृदु युगल किशोरा । सांतानिक सम विभव विभोरा।।
सत चिद आनंद सकल समाजा । अपराजित पुरि मनहुँ विराजा।।
सो रस सो सुख भाव अनूपा । परा अयोध्या रह जस रूपा।।
तिय सह निज कहँ देखहिं तैसे। सुभग पुत्र पुर वासी वैसे।।
राम सीय लखि अक्षर धामा । प्रेम प्रवाह बढ़यो सह वामा।।
भूली सुधि सब तन मन केरी । शिथिल शरीर राम पद हेरी।।

पुनः श्रीविदेह कुमार स्तुति करते हैंः-

विशुद्ध बुद्धि पारकं, नमामि जीव तारकम्। (प्रे/1/443)

इस प्रकार, जो राम नाम है, वही सीता नाम। दोनों में कोई अन्तर नहीं। आचार्य प्रभु इस रहस्य का उद्घाटन पुनः पुनः करते हैं-

हर्षण सतसई (नाम परत्व)-

राम नाम सीता अहे, सीता नामहिं राम।
हर्षण कबहुँक अलग नहिं, जिमि सूरज अरु घाम ।। 114।।

श्रीप्रेमरामायण (1/24ग)-

रामहिं सीता जानि जिय, सीतहिं राम सुजान।
भाव सहित सियराम रटि, पाइअ प्रेम प्रमान।।

वृहद् विष्णुपुराणे में कहा गया है कि जो "राम' शब्द है, उसी का अर्थ सीता है। और वाणी द्वारा जो 'सीता' उच्चारण किया जाता है, उसी का अर्थ राम है-

यद्‌वा शब्दात्मको रामो, सीता शब्दार्थ रूपिणी।
यद् वा वाणी भवेत् सीता, रामः शब्दार्थ रूपवान्।।

(मानस पीयूष, पृ0 289 पर)

श्री राम मंत्रार्थ में जिस प्रकार 'रकार' को सगुण परमैश्वर्य सागर राम का वाचक, 'मकार' को सकल कैंकर्य -निपुण जीव का वाचक और मध्यगत 'अकार' को पुरुषकार-रूपिणी श्रीसीताजी का वाचक कहा गया है, उसी प्रकार आलोच्य श्रीसीतामंत्र के मध्यम पद में 'सकार' को श्रीसीता-वाचक, 'ता' को श्रीराम-वाचक और सीता के 'ईकार' को श्रीविदेहराज सहित श्रीविदेहकुमार श्रीलक्ष्मीनिधि जी का वाचक कह सकते हैं। ईकार निरूपण क्रमांक (18) में हम ईकार को इन दोनों का वाचक निरूपण कर चुके हैं। अतः मंत्रार्थ की दृष्टि से 'सीता' पद का अर्थ वही है, जो 'श्री' पद का, जैसा कि हम ईकारार्थ निरूपण में देख चुके हैं। अतः सीता पद का अर्थ हुआ श्री लक्ष्मीनिधि जी सहित युगल श्रीसीतारामजी महाराज, जो दर्शन विवाहोपरांत प्रातःकालीन पौड़ी के "समैया" दरबार में हुआ करता है।

मध्यम पद 'सीतायै' में जो चतुर्थी विभक्ति, एक वचन का 'यै' है, वह प्रयोजन -मूलक है। संप्रदाने चतुर्थी का अर्थ है कि जहाँ दान दिया जाता है, वहां चतुर्थी विभक्ति लगती है। 'सीता' पद के साथ जो चतुर्थी विभक्ति है, वह श्रीसीताजी के साथ एकात्मकता को प्राप्त हुई उनकी सेवा हेतु समर्पित उनकी अंशभूता समस्त भगिनि-दासी-सखी-परिकर का वाचक है। पुनश्च, सीतायै स्वाहा या नमः में स्वाहा या नमः जीव वाचक है और 'सीता' पुरुषकारिणी शक्ति-वाचक है। जब जीव श्रीसीताजी की शरणागति द्वारा एकात्मकता को प्राप्त होता है, तब वे पुरुषकार द्वारा प्रभु की प्राप्ति कराके उसे अभय पद प्रदान कर देती हैं, जिसका विशेष निरूपण तृतीय पदार्थ 'नमः' में किया जाएगा। इस प्रकार 'सीता' पद की चतुर्थी विभक्ति उनकी अंशजा अनुजा और सखियों तथा जीव मात्र के लिए है।

ईकारार्थ निरूपण क्रमांक (18) में हम श्रीसीताजी की अंशजा अनुजाओं और सखियों का निरूपण कर चुके हैं। श्री लाड़िली जू विवाहोपरान्त जनकपुर से विदा होने लगीं तो भेंट में उनकी सेवा हेतु सब नारियों ने अपनी-अपनी कन्या का समर्पण कर दिया। इतना ही नहीं, जो-जो राजा स्वयंवर में आए हुए थे, उन्होंने भी अपनी-अपनी

कन्या श्रीराजकिशोरीजू की सेवा में समर्पित कर दिया। श्रीप्रेमरामायण (1/457-58) में आचार्य प्रभु इसका प्रेम-विभोर दृश्य उपस्थित करते हैं-

ताही समय नगर नर नारी । जानि बिदा की तुरत तयारी।।
आई सदन सुनैना रानी । देखि सियहिं विलपहिं विरहानी।।
सियहिं देन सब भेंट महानी । करै को लेख द्रव्य बहुतानी।।
विपुल नारि सिय सेवा माहीं। बाला बाल अरपि सरसाहीं।
भूली सुधि सर रंग डुबाया । पुत्र पुत्रिका आनँद पाया।।
औरहुँ भूपन की वर नारी । आई रहीं धनुष मख भारी।।
प्रेम विभोर बाल कोउ बाला । सियहिं दीन्ह करि भाव विशाला।।

गोस्वामी जी भी इसका संकेत करते हैं-

गज रथ तुरग दास अरु दासी । धेनु अलंकृत कामदुहा सी ।।
वस्तु अनेक करिअ किमि लेखा । कहि न जाई जानहिं जिन्ह देखा।
लोकपाल अवलोकि सिहाने । लीन्ह अवधपति सबु सुख माने।।(मानस/1/326)

वैदेही दर्शन (पृ0 18) में श्रीआचार्य प्रभु अनुग्रह करते हैं कि ''श्रीसीताजू की सखी सहचरियाँ एवं दासियाँ तो उन्हीं के आकार-प्रकार वाली ऐसी हो जाती हैं कि श्री वैदेही वल्लभ लालजू को अपनी प्राण वल्लभाजू को पहचानने में भ्रम हो जाता है। श्रीरामजी किसी भी सखी को सीताजी समझकर भेंटने को यदा-कदा उत्कंठित हो जाया करते हैं।''

इस प्रकार चतुर्थी विभक्ति 'यै' पद प्राप्त, सकल दारिका-परिचारिका श्रीसीता-स्वरूपा हो जाती हैं। श्रीस्वामिनीजू की आत्मा जिस दशा को प्राप्त होती है, उसी दशा में ये सब लीन हो जाती हैं। जब श्री लक्ष्मीनिधि जू साकेत जाते हैं तो किशोरीजू जिस प्रकार विलख-विलख कर अपने भैयाजू से मिलती हैं, उसी प्रकार सभी बहनें और सखी-सेविकाएँ भी। श्रीप्रेमरामायण (2/257-58) की कतिपय पंक्तियाँ द्रष्टव्य हैं-

बिलखि बिलखि भ्राता भगिनि, बने दोय के एक।
प्रेम सरोवर उमड़ि चल, दियो डुबाय विवेक।।
कछुक काल लहि धैर्य कुमारा । औरहु भगिनिन मिलेव सुखारा।
उरमीला माण्डवि श्रुतिकीरति । प्रेम विवस तन दशा विमूरति।
भ्रातहिं कीन्ह सकल प्रणामा । विरह सनी भूली तन धामा।।
चहुँ दिशि औरहु भगिनि सुसोहीं । सखी सेविका बैठि विमोहीं।

आत्म आत्म सिय पाइ प्रिय, आनँद रूप कुमार।
पोंछत भगिनी नयन जल, करि वात्सल्य उदार।।

आचार्य प्रभु विनयवल्लरी (पद 145) में गा उठते हैं-

सिय स्वामिनि के गांव बसो मैं तो।
सियहिं भरोसे सिय कृप जोहत, अनत उठत नहिं पांव ।।
सिय की दीन्हीं शीथ प्रसादी, करि प्रणाम नित खाँव।।
सिय को स्वयं अहौं मैं नित नित, पाली सियहिं स्वभाव।।
सिय सेवा हित मैं अरु मोरहु, बार-बार बलि जाँव।।

इस प्रकार "श्री ँ सीतायै" इन चार अक्षरों का संकलित अर्थ यह हुआ कि यह जीव और उनकी अंशभूता दास-दासियाँ श्रीसीताराम युगल सरकार का अंश (शेष) है। उसके समस्त कर्मों के एकमात्र भोक्ता युगल प्रिया-प्रीतमजू हैं। संक्षेप में, प्रथम पद शेषी-शेष भाव और द्वितीय पद भोक्ता, भोग्य भाव व्यंजक है।

***

।। श्री रामः शरणं मम ।।

क्रमांक- 24 तृतीय पदार्थ-निरूपण

श्रीसीतामंत्र में तृतीय पद है- 'स्वाहा' या 'नमः'। क्रमांक (4) 'श्रीसीतामंत्र का पदच्छेद' शीर्षक में कह चुके हैं कि 'नमः' और 'स्वाहा' एकार्थक शब्द हैं:- 'नमः स्वस्ति स्वाहा लं वषड् योगाच्च' (पाणिनि 2/3/16)। क्रमांक (22) में 'श्री ँ' वीज का शेष मंत्र में विस्तार-निरूपण करते हुए कहा गया है कि 'स्वाहा' या 'नमः' वीज के विन्दु का विस्तार अथवा विवरण है। क्रमांक (20) 'बिन्दु निरूपण' में कहा गया कि बिन्दु जीव-वाचक है। जिस आधार श्लोक (प्रेमरामायण/1/मं0/7-8) पर वीज का पदच्छेद (क्रमांक 4) किया गया है, उसमें 'अभयश्रेयसां रात्रीं जीव रक्षण तत्परम्' पद को विन्दु का वाच्य कहा गया है। इस प्रकार स्पष्ट होता है कि अखण्ड 'स्वाहा' या 'नमः' पद जीव वाचक है साथ-साथ प्रपत्ति (उपाय) वाचक भी। प्रभु-प्राप्ति का सिद्धोपाय प्रपत्ति है, जिसके बिना जीव निर्भय और ब्रह्मपद प्राप्त नहीं कर सकता। जीव मात्र ईश्वर का अंश है, सच्चिदानन्द-स्वरूप है लेकिन माया के वशीभूत होकर अपने विनाश से भयभीत, जड़, समल और सहज दुःख का पिण्ड बना है-

ईस्वर अंस जीव अविनासी । चेतन अमल सहज सुखरासी।।
सो मायावस भयउ गोसाईं । बंध्यो कीर मरकट की नाईं।।
(मा/7/117)

'स्वा' का अर्थ है स्वत्व और 'हा' का अर्थ है हानि अर्थात् त्याग। स्वत्व का त्याग 'स्वाहा' है:-

स्वत्व जागतिक कुँअर कर, जहँ लगि रहा सुभाय।
सिय सुख हेतहिं प्रेम युत, अरपेउ रुचिर बनाय।। (प्रे/1/401)

पुनश्च-

मम भावि राजहुँ सीय हित अरपित अहे सुख छाय कै
धनि धन्य वोलहिं जय जयति बहु कुँअर कीन्हीं त्याग तुम।।

अहम् (मैं) और मम (मोर) का अर्पण 'नमः' है- अहम् न मम् अपि। 'जो स्वाहा अथवा नमः का अर्थ है, वही अर्थ है प्रपत्ति का। अतः स्वाहा या नमः प्रपत्ति-वाचक है।

प्रपत्ति दर्शन (सूत्र 26-28) में विस्तार-पूर्वक आचार्य प्रभु व्युत्पत्ति-परक प्रपत्ति का अर्थ कहते हैं। " प्रकर्षेण पत्तिः प्रपत्तिः' अर्थात् प्रकर्षतया प्रणम्य को प्रणाम करना प्रपत्ति है।श्रीरामजी के चरण-कमलों में अपने को (अहं-मम को) गिरा देना (समर्पण कर देना) प्रपत्ति कही गयी है, जिसका भावार्थ यह हुआ कि यह चेतन स्व बल और पर बल का स्वरूपतः त्याग कर, स्व रक्षा (योग क्षेम) का भार स्व के सहित श्रीरामजी कें चरणों में चढ़ा दे और स्व सुख शून्य होकर, श्रीरामजी के श्रीमुख कमल को सदा विकसित बने रहने के लिए उनके सकल विधि कैंकर्य करने की प्रार्थना करे।

दासोऽहं, दासोऽहं, दासोऽहं की भावना से युक्त होकर, अंगी के अंग की तरह अहम्-मम् से शून्य होकर, सर्व समय की सर्व सेवाओं को करना, स्व स्वरूप समझना ही प्रपत्ति का स्वरूप है।

पुनश्च, जिस प्रकार 'स्वाहा' शब्द का उच्चारण करते ही हाथ की आहुति अग्नि में गिर जाती है और नमस्कार (प्रणाम करते ही) शरीर डंडे की तरह (दण्डवत्) प्रणम्य के समक्ष गिर जाता है, उसी प्रकार अश्रु, शरीर और अहममादि का प्रभु चरणों में गिर जाना प्रपत्ति है- प्रपतति प्रपत्तिः (प्रपत्ति दर्शन, सूत्र 28)। इसकी व्याख्या करते हुए आचार्य प्रभु अनुग्रह करते हैं कि " निराश्रय, निरुपाय, एवं मनोबल, बुद्धिबल और आत्मबल से रहित त्रिताप की अग्नि से झुलसता हुआ दुःख-स्वरूप प्राणी जब सर्व समर्थ, सर्व रक्षक, सर्वेश्वर की शरण में आता है तब 'प्रपतन्ति अश्रु विन्दवः' रोता-गिड़गिड़ाता हुआ व्याकुल बदन 'त्राहि माम्! त्राहि माम्!' की रट लगाता है। "शरीरोऽपि पतति", इस प्रकार सर्वथा अहं और मम विहीन होकर परम प्रभु के चरणों का आश्रयण ग्रहण करता है। 'तस्मिन समये अहमपि पतति तस्य सर्वं पतति' अर्थात् शरणागत चेतन सर्व साधन हीन, माया के बंधन से बद्ध एवं अशरण अपने को समझता हुआ जब पतित पावन, अधम उधारण, गरीब निवाज, सर्व लोक शारण्य श्रीरामजी के चरणों में 'श्रीरामः शरणं मम' कहता हुआ गिर जाता है, आश्रयण पाने की कामना से, तब उस उक्त प्रक्रिया को प्रपत्ति कहते हैं। (प्रपत्ति दर्शन, पृ0 23-24)

'नमः' अथवा 'स्वाहा' प्रभु-प्राप्ति का एक श्रेष्ठ उपाय है, जो कर्म-ज्ञान और भक्ति से भी श्रेष्ठ है। आचार्य प्रभु ने प्रपत्ति दर्शन (सूत्र 219) में उपाय का स्वरूप श्रीजानकी जी की भाँति प्रतिपादित किया-

उपायस्य स्वरूपो सीतावत्

इसकी स्वयं व्याख्या करते हुए वे अनुग्रह करते हैं कि "शरणागत चेतन सर्वोपायों का अवलंबन न लेकर केवल सर्वलोक शारण्य श्रीरामजी की कृपा को

देह-यात्रा और आत्म-यात्रा का निर्वाहक समझता है, जैसे श्रीजनकराजतनया जू ने स्वशक्ति और अन्याश्रय का भलीभाँति त्याग करके एक श्रीरामजी को ही अपने उद्धार का हेतु दृढ़ निश्चय किया है:-

यदि रामो दशग्रीवमिह हत्वा सराक्षसम्।
मामितो गृह्य गच्छेत् तत तस्य सदृशं भवेत्।(वा0 रा0/सुं0/37/64)

अर्थात् यदि श्रीरघुनाथजी यहाँ राक्षसों सहित दशमुख रावण का वध करके मुझे यहाँ ले चलें तो वह उनके योग्य कार्य होगा।

श्रीसीताजी स्वयं सर्वशक्ति संपन्ना थीं, वे अपनी अचिन्त्य शक्ति के क्षुद्रांश से रावण व रावण-संबंधी सर्व वस्तुओं को भस्म कर देने में सहज समर्थ थीं किन्तु अपनी रक्षा के लिए अपनी शक्ति का प्रयोग उन्होंने नहीं किया क्योंकि ऐसा करने से शरणागति धर्म एवं सर्व समर्पण के स्वरूप (उपाय स्वरूप) की हानि होती है। वे स्वयं रावण से कहती हैं-

असंदेशात्तु रामस्य तपसश्चानु पालनात्।
न त्वां कुर्मि दशग्रीव भस्म भस्मार्ह तेजसा।
(वा0 रा0/सुं0/22/20)

अर्थात् हे दशमुख रावण! मेरा तेज ही तुझे भस्म कर डालने के लिए पर्याप्त है। केवल श्रीरामजी की आज्ञा न होने से और अपनी तपस्या को सुरक्षित रखने के विचार से मैं तुझे भस्म नहीं कर रही हूँ।

'नमः' अथवा 'स्वाहा' पद जीवात्मा के स्वरूप को प्रकाशित करता है। अहम् और मम से रहित होकर शरणागति ग्रहण करना जीवात्मा का स्वरूप है- प्रपत्तिः स्वरूपं प्रकाशयति (प्रपत्ति दर्शन, सू0 51) अर्थात् प्रपत्ति चेतन के स्वरूप को प्रकाश में लाती है। स्वरूप, अहममादि दोषों से उसी प्रकार आवृत्त रहता है, जैसे मेघाच्छादित सूर्य। शरणागति अहं और मम के निवृत्त हो जाने पर ही हो पाती है। अस्तु, अहंकार-ममकार तथा तज्जनित कार्य दोषों के न रहने पर आत्मस्वरूप मात्र ही शेष रह जाने से वह उसी प्रकार प्रकाशने लगता है जैसे सर्वथा बादलों के हट जाने पर निर्मल आकाश स्थित प्रभाकर। (प्रपति दर्शन, पृ0 36)

'स्वाहा' या नमः आत्मा के त्यागमय एकाङ्गी निर्मल भाव का वाचक है। श्री किशोरीजू अपनी एक अन्तरंग सखी से इस निर्मल भाव का परिचय देती हैं- "प्रिय सखी! मेरे प्रभु के श्रीचरणों में 'मैं' और जो कुछ 'मेरा' था, सब समर्पित हो गया। मैंने किया नहीं, हो गया। मेरी सारी ममता, सभी प्राणी-पदार्थ-परिस्थितियों से हट

गई। अब तो मेरी संपूर्ण ममता का संबंध केवल एक प्रियतम प्रभु से ही रह गया। जगत् में जहाँ कहीं भी, जितना भी, जो भी मेरा प्रेम-विश्वास और आत्मीयता का संबंध था, सब मिट गया। अब तो मैं केवल उन्हीं के चरणों में बंध गयी। उन्हीं में सारा प्रेम केन्द्रित हो गया। उन्हीं का भाव रह गया। यह सारा संसार भी उन्हीं में विलीन हो गया'' (श्रीहनुमान प्रसाद पोद्दार, श्रीराधा माधव चिन्तन, पृ0 38)

यह जीवात्मा परमात्मा का दास है, यह मंत्र का 'नमः' या 'स्वाहा' पद ही सिद्ध करता है। 'अयमात्मा ब्रह्मदासः श्रुतिर्वदति' (प्रपत्ति/सू0 52)

आचार्य प्रभु पाराशर स्मृति का निम्नलिखित प्रमाण प्रस्तुत करते हैं-

दासभूतः स्वतः सर्वे ह्यात्मानः परमात्मनः ।
नान्यथा लक्षणं तेषां बन्धे मोक्षे च विद्यते।।

अहं-मम-रहित सर्वात्म समर्पण बुद्धया श्रीरामजी का शेषभूत दास बनकर तत्सुख सुखित्वम् की भावना से सर्व समय के सर्व विधि कैंकर्य करने के आकार में स्थित हो जाना ही प्रपत्ति धर्म अर्थात् प्रपत्ति का स्वरूप है। इसलिए आत्मा और प्रपत्ति के धर्म में अन्तर न होने से प्रपत्ति चेतन के स्वरूपानुरूप है। (प्रपत्ति दर्शन, पृ0 36-37)

आचार्य प्रभु उपदेशामृत (पृ04/सू0 27, 30) में सूत्ररूप से अनुग्रह करते हैं:-

सूत्र 27- मूल मंत्र के 'नमः' पद से चेतन की उपायान्तर-निवृत्ति शरीर के समान शेषभूत होकर स्वरूप में स्थित रहना और उपेय की कृपा को ही उपाय मानना कहा गया है।

सूत्र 30- जीव भगवान का सहज दास है क्योंकि आचार्यो का अभिमत है कि सच्चिदानन्दात्मक स्वरूप से भी दासात्मक स्वरूप अन्तरंग है।

'स्वाहा' अथवा 'नमः' पद के बिना श्रीसीताजू का पुरूषकार संभव नहीं, जिसके बिना जीव न अभय हो सकता और न सर्वश्रेष्ठ ब्रह्मपद प्राप्त कर सकता है। स्वाहा या नमः के अभाव में जीव मात्र की रक्षा नहीं हो सकती। जब तक सुरपति-सुत जयन्त ने अपने स्वत्व का त्याग नहीं किया, अहम्-मम--रहित होकर जगज्जननी श्रीजानकीजू के सामने काँव-काँव करते आर्त होकर गिर नहीं पड़ा तब तक श्रीजू ने उसके मस्तक को प्रभु के श्रीचरणों में अर्पित करके उसे अभय नहीं किया। प्रपत्ति दर्शन (सूत्र 14) में जयन्त और राक्षसियों के अभयदान का निरूपण करते हुए कहते हैं कि ''तुरन्त मार डालने योग्य एवं अपने ही प्रति अक्षम्य अपराध करने वाले सुरपति-सुत के अपराध को बिना उसके क्षमापन कराये सहज ही क्षमा कर दिया रामवल्लभा श्रीसीताजू ने:-

प्राण संकट मापन्नं दृष्ट्वा सीताऽथ वायसम्।
त्राहि त्राहीति भतरिमुवाच दयया विभुम्।।

विदेहतनयाजू की इस कृपा की असीमता का आकलन करके श्रीरामजी विभोर हो गए। परिणामतः जयन्त को अभय-दान की प्राप्ति हो गई।

राक्षसियों के दोष प्रसिद्ध ही हैं, जिन्हें देखकर श्रीहनुमानजी जैसे ज्ञानाग्रणी एवं भक्ताग्रणी ने भी अवध्य स्त्री जाति की होती हुई राक्षसियों का चित्रवध करने का निश्चय कर लिया था किन्तु जनकप्रसूता श्रीजानकीजू ने वध करने को उद्यत श्रीहनुमानजी को राक्षसियों को न मारने का विविध विधि से उपदेश देकर, अपनी ही अपराधिनियों के प्राण बचा लिए तथा प्राण बचाकर उनसे उदासीन हो गईं सो नहीं, अपनी सखी-सहचरी बनाकर उन्हें परमपद की अधिकारिणी बना दिया। (प्रपत्ति दर्शन, पृ0 11) इस प्रकार 'नमः' या 'स्वाहा' पद अभय एवं श्रेष्ठ पद प्रदान करने वाला है।

निष्कर्षतः, 'स्वाहा' या नमः पद (1) प्रपत्ति वाचक (2) उपाय वाचक (3)आत्म-स्वरूप वाचक (4) दास-वाचक और (5) पुरुषकार-हेत्वर्थ है।

***

।। श्री रामः शरणं मम ।।

क्रमांक- 25 सखण्ड 'स्वाहा' या 'नमः' - निरूपण

'स्वा' और 'हा' स्वाहा के सखण्ड पद हैं तथा 'न' और 'मः' नमः के सखण्ड पद हैं। हम क्रमांक (24) में देख चुके हैं कि 'स्वा' का अर्थ है स्वत्व और 'हा' का अर्थ है त्याग (हानि) अर्थात् स्वत्व का त्याग स्वाहा है। श्रीप्रेमरामायण (1/401) का प्रमाण प्रस्तुत किया गया-

स्वत्व जागतिक कुँअर कर, जहँ लगि रहा सुभाय।
सिय सुख हेतहि प्रेमयुत, अरपेउ रुचिर बनाय।।

'नमः' में 'नकार' अव्यय पद निषेध-वाचक है और 'मः' षष्ठ्यन्त पद ममकार का वाचक है। दूसरी दृष्टि से 'नमः' पद का अर्थ इस प्रकार भी किया गया है। 'न अहम्' अर्थात्मेरा दृष्टिगोचर जो भी नाम, रूप और व्यापार है, वह वास्तविक नहीं है, व्यावहारिक है। मेरा पारमार्थिक स्वरूप तो कुछ और है। उपदेशामृत (स्व स्वरूप, सूत्र 1,3) के अनुसार "स्व-स्वरूप सच्चिदानन्दमय, ज्योतिर्मय, नित्य, मुक्त, शुद्ध, बुद्ध, असंग और अणु है। वह स्वभाव से परब्रह्म का शेषभूत दास है और उसी परमेश्वर के परतंत्र है" सूत्र 3- जीव ईश्वर का अंश है, शेष है, भोग्य है और रक्ष्य है।

जब दृश्यमान व्यावहारिक 'अहम्' की वास्तविक सत्ता नहीं है तब अहम् से संबंधित देह, गेह, परिवार, सनेही आदि- 'मम' की पारमार्थिक सत्ता स्वयमेव समाप्त हो जाती है। दूसरे शब्दों में, न मैं हूँ और न कुछ मेरा है। इसे ही एक शब्द "अहमपि न मम" में व्यक्त करते हैं।

अहम् और मम् भगवत्प्राप्ति में विरोधी स्वरूप है। उपदेशामृत (पृ0 46) में विरोधी स्वरूप का सूत्र प्रस्तुत करते हुए श्रीआचार्य प्रभु कहते हैं कि-

सूत्र 2- अस्मिता (मैं-पने का ज्ञान) बृहद् रूप धारण कर अहंकार के नाम से पुकारी जाती है, जिसके रहते स्व स्वरूप, पर स्वरूप, उपाय स्वरूप और फलस्वरूप का ज्ञान नहीं हो पाता। अभिमान, संपूर्ण शोकों को जन्म देनेवाला पिता है।

सूत्र 3- ममकार (ममत्व) मृत्यु का दूसरा स्वरूप है। देह संबंधित वस्तुओं से ममता करके जीवात्मा राग-द्वेष की अग्नि में जलता रहता है। कभी काम, कभी क्रोध, कभी लोभ, कभी मोह उत्पन्न होकर सर्वदा जीवात्मा को क्लेश का शिकार बनाये रहते हैं।

शरणागत चेतन का किया हुआ किसी प्रकार का अभिमान प्रपत्ति स्वरूप को नष्ट कर देता है- अभिमानोऽपि प्रपत्तिं, नाशयति (प्रपत्ति दर्शन, सू0 145) इसकी व्याख्या करते हुए श्री आचार्य प्रभु अनुग्रह करते हैं:-

"शरणागत चेतन तवास्मि (मैं आपका हूँ), अपना नहीं (अहमपि न मम) कहकर प्रपत्ति ग्रहण करता है, अतएव 'मैं-मेरे' में उसका नाम मात्र अधिकार नहीं रह जाता जिस प्रकार एक रावण अनेक रूप धारण करता है, उसी प्रकार एक अभिमान देह. स्वरूपादि से युक्त होकर निम्न लिखित अनेक रूप धारण करता है, जिनसे रहित होकर ही जीव शुद्ध, बुद्ध, मुक्त हो सकता है-

(1) देहाभिमान (2) स्वरूपाभिमान (3) उपायाभिमान (4) उपेयाभिमान (5) कर्तृत्वाभिमान (6) ज्ञातृत्वाभिमान (7) भोक्तृत्वाभिमान । इनकी विस्तृत व्याख्या प्रपत्ति दर्शन, सूत्र 146 से 152 तक की गयी है।

पारमार्थिक रूप से जीवात्मा, परमात्मा का अंश है। वह नित्य है। जीव अहम् और मम रहित अकिंचन है। यदि वह अहम्-मम से युक्त होता है तो वह कर्म-बंधन में बाँधा जाता है। जो कुछ है, वह श्रीरामजी का है। प्रभु की वस्तु प्रभु को अहंकार-पूर्वक प्रदाता बनकर देने से वह दुःख का भागी बनता है। उसे चोर, कृतघ्न और अपराधी की कोटि में ही रखा जाएगा। अतः भगवान् को जो कुछ अर्पित करे, उन्हीं का मानकर करे- त्वदीयं वस्तु भो राम! तुभ्यमेव समर्पयेत्। अहम्-मम-रहित होकर श्रीसीतारामजी का भजन करने से ही आनन्दं ब्रह्म की प्राप्ति होगी।

स्वयं नित्य सब सियपति केरा । जीव अकिंचन बिनु मैं मेरा।।
अहं भाव भरि बनै प्रदाता । बाँधत तिनहिं कर्म दुख दाता।।
रामहिं बस्तु राम को देई । आपन गिनै अहं मति भेई।।
चोर कृतघ्न अमित अपराधी । काल कर्म स्वभाव गुन बाँधी।।
याते राम सियहिं जो देवै । मानि उनहिं की हिय मान धेवै।।
अहं छोड़ि ममता बिसराई । भजहि सियायुत श्रीरघुराई।।
आनन्द सिन्धु करै सो बासा । नाहित भटकत मरत पिपासा।।

(प्रेमरामायण/1/403)

अतएव मैं और मोर को प्रभु के श्रीचरणों में अर्पित कर उन्हीं का होकर सेवा करनी चाहिए:-

जो मैं अहौं मोर जो होई । राम चरण अरपौं सुख मोई।।(प्रे/1/401)

क्रमांक (23) 'द्वितीय पदार्थ निरूपण' के अन्तर्गत यह कहा गया कि 'अर्थ पंचक की दृष्टि से विचार करने पर 'श्रीँ' बीज पर स्वरूप, 'सीतायै' स्व स्वरूप, सीतायै पद की चतुर्थी विभक्ति 'यै' फलस्वरूप, अखण्ड 'स्वाहा' या 'नमः' उपाय स्वरूप और सखण्ड 'स्वा' और 'हा' अथवा 'न' और 'मः' विरोधी स्वरूप है। अतः विरोधी स्वरूप के अन्तर्गत सखण्ड स्वाहा और नमः का निरूपण किया गया।

क्रमांक (22) 'श्रीँ' बीज का शेष मंत्र में विस्तार 'शीर्षक के अन्तर्गत यह कहा गया कि श्रीँ बीज का बिन्दु, अखण्ड स्वाहा अथवा नमः है और सखण्ड 'स्वा' और 'हा' अथवा 'न' और 'मः'क्रमशः अर्द्धमात्रा तथा नाद के विस्तृत रूप हैं। अर्थात् 'स्वा' और 'न' अर्द्धमात्रा के विस्तृत रूप हैं और 'हा' और 'मः' नाद के। अर्द्धमात्रा को तुरीय स्वरूप कहा गया है और वह आधार श्लोक में प्रयुक्त 'नित्यां महाभाव रूपां' पद का वाचक माना गया तथा नाद को 'ब्रह्माण्डानन्त कारिणीम्' पद का वाचक कहा गया (देखें- क्रमांक 4 शीर्षक 'श्रीसीतामंत्र का पदच्छेद)। अतः 'स्वा' और 'न' का अर्द्धमात्रा के विस्तृत (विवरण) रूप में निरूपण किया जा रहा है।

क्रमांक (19) ''अर्द्ध मात्रा निरूपण'' के अन्तर्गत कहा गया कि ''श्रीसीतामंत्र का पदच्छेद करते हुए श्रीप्रेमरामाण (1/1) के आधार श्लोक में प्रयुक्त 'नित्यां महाभावरूपां' पद को अर्द्धमात्रा का वाच्य कहा गया है। आदिशक्ति श्रीसीताजी श्रुति-शास्त्र-प्रमाणित नित्य हैं, शाश्वत हैं, सनातनी शक्ति हैं। यह इनका तुरीय स्वरूप है। यही तुरीय स्वरूपा शक्ति जब लीला हेतु शरीर धारण करती हैं तब इनका यह स्वरूप इनके 'महाभाव स्वरूप' में अप्रकट रहता है। जीवमात्र को प्रभु-प्राप्ति हेतु यह महाभाव स्वरूप वे प्रकट करती हैं।''

जब सभी प्रकार के स्वत्व का त्याग हो जाता है, तब जीवात्मा महाभाव प्रदेश में प्रवेश का अधिकारी होता है। पुनश्च, जब सभी प्रकार अस्तित्व का निषेध हो जाता है तभी जीवात्मा महाभाव में प्रवेश पाता है। ''जिस अवस्था में सोया हुआ मनुष्य किसी प्रकार के किसी भी भोग की न तो कामना करता है और न अनुभव ही करता है तथा किसी प्रकार का स्वप्न भी नहीं देखता, ऐसी अवस्था को सुषुप्ति कहतें हैं। इस सुषुप्ति अवस्था के सदृश जो प्रलयकाल में जगत् की कारण अवस्था हैं, जिसमें नाना 'रूपों' का प्राकट्य नहीं हुआ है- ऐसी अव्याकृत प्रकृति ही जिसका शरीर है तथा जो एक अद्वितीय रूप में स्थित है, उपनिषदों में जिसका वर्णन कहीं सत् के नाम से (सदेव सोम्येदमग्र आसीत छां0 उ0 6/2/1) और कहीं आत्मा के नाम से (आत्मा वा इदमेक एवाग्र आसीत् - ऐत0 उप0 1/1/1) आया है, जिसका एकमात्र चेतना (प्रकाश) ही

मुख है और आनन्द ही भोजन है, वह विज्ञानधन, आनन्दमयं प्राज्ञ ही उन पूर्ण ब्रह्म का तीसरा पाद है।'' (ईशादि नौ उपनिषद् पृ0 263)

''परमात्मा के नामात्मक ओंकार (राम नाम) की जो तीसरी मात्रा 'म' है, यह 'मा' धातु से बना है। 'मा' धातु का अर्थ माप लेना यानी अमुक वस्तु इतनी है, यह समझ लेना। यह 'म' ओंकार (या राम नाम) की अंतिम मात्रा है। 'अ' और 'उ' के पीछे उच्चरित होती है- इस कारण दोनों का माप इसमें आ जाता है अतः यह उनको जानने वाला है। 'म' का उच्चारण होते-होते मुख बंद हो जाता है, 'अ' और 'उ' (र् और 'आ') दोनों उसमें विलीन हो जाते हैं। अतः वह उन दोनों मात्राओं को विलीन करने वाला भी है।''

कहने का तात्पर्य यह है कि 'स्वा' और 'न' परब्रह्म पुरूषोत्तम भगवान् श्रीरामजी महाराज की प्राज्ञ अवस्था है, जो सुषुप्ति के समान है और 'ओंकार' या 'रान' नाम का 'मकार' पद है, जिसके उच्चारण के बाद मुख बंद हो जाता है। श्रुतियों में इसी दशा के निर्देश के लिए मंत्र हैं- नान्यत् पश्यति, नान्यत् शृणोति, नान्यत् विजानीयात्। गोस्वामीजी इसी स्वत्वहीन और सर्वसत्ता निषेधमूलक दशा का निर्देश विनय पत्रिका (105) में करते हैं:-

जानकी जीवन की बलि जैहौं।
चित कहै रामसीय पद परिहरि, अब न कहूँ चलि जै हौं।।
उपजी उर प्रतीति सपनेहुँ सुख, प्रभु-पद विमुख न पैहौं।
मन समेत या तनके वासिन्ह, इहै सिखावन देहौं।।
श्रवननि और कथा नहिं सुनिहौं, रसना और न गैहौं।
रोकिहौं नयन विलोकत औरहिं, सीस ईस ही नेहौं।।
नातो-नेह नाथ सों करि, सब नातो-नेह बहैहौं।
यह छर -भार ताहि तुलसी जग जाको दास कहैहौं।।

प्राज्ञ के पश्चात् ही तुरीय अवस्था है। मकार के बाद ही अर्द्धमात्रा का प्रदेश है। इसी प्रकार स्वत्वहीन और सर्वसत्ता-निषेधमूलक दशा की प्राप्ति के बाद ही अर्द्धमात्रिक महाभाव दशा में प्रवेश होता है। जहाँ एक अपना प्रियतम ही दर्शनीय, श्रवणीय, मननीच और निदिध्यासनीय हो जाता है। श्रुतियों ने इसी के लिए कहा है- आत्मावारे द्रष्टव्यः। आत्मावारे श्रोतव्यः। आत्मावारे मन्तव्यः। आत्मावारे निदि्ध्यासितव्यः। आत्मावारे अन्वेषितव्यः।

श्रीप्रेमरामायण के पुष्पवाटिका प्रसंग (प्रे/1/239-261) में उपर्युक्त वेदमंत्रों का अर्थ कथानक रूप में कहा गया है। उदाहरणार्थ-

(1) आत्मावारे द्रष्टव्यः स्थिति

देखन योग अवशि नृप बालक । सुख-गुण-रूप-राशि जन पालक।।(प्रे/1/248/4)

(2) आत्मावारे श्रोतव्यः स्थिति

श्रवण योग कीरति सुखकारी । खल दलि शर पदरज तिय तारी।।(प्रे/1/248/5)

(3) आत्मावारे मन्तव्यः स्थिति

मनन योग जेहि तत्व स्वरूपा । प्राणहुँ प्राण अहैं नर भूपा।।(प्रे/1/248/6)

(4) आत्मावारे निदिध्यासितव्यः स्थिति

तायक निदिध्यासन हिय हारा । सबहि रमावै अपन मंझारा।।(प्रे/1/248/7)

(5) आत्मावारे अन्वेषितव्यः स्थिति

करि अन्वेषण सखी सहेली । सींचहुँ सकल मनोरथ बेली।।(प्रे/1/248/8)

अन्वेषण करते-करते जब अदर्शन असह्य हो जाता है तब संपूर्ण जगत से चित्त वितृष्ण-विरक्त हो जाता है। अन्तःकरण चतुष्टय अपने प्रियतम में लीन हो जाता है-

छनक अदर्शन नहिं सहि जाया । विश्व विराग हिये महँ छाया।।
करन चतुष्टय अन्तः केरे । राम रूप महँ लीन्ह बसेरे।।(प्रे/1/249)

इसका परिणाम यह हुआ कि प्रेमास्पद पूर्णकाम प्रभु को जैसे ही श्रीकिशोरीजू की पैजनी की झुन-झुन आवाज सुनाई दी, वैसे ही उधर देखा और लाडिलीजू को देखते ही उनका भी मन उनमें लीन हो गया-

कटि कर पद भूषण धुनि छाई । श्रवण रंध्र रघुबर उर आई।।
सुनतहिं भये प्रेमवश रामा । हृदय भर्यो रस ललित ललामा।।
कहतहिं कहत दृष्टि उत जाई। देखी सियहिं सरस सुखदाई।।
अनिमिष निरखत सियहिं स्वधामा । राम ब्रह्म भे पूरण कामा।।
आपा भूलि सियहिं मन लीना । बाढ़ेव रंग महारस भीना।।
(प्रे/1/250-51)

यहाँ प्रयुक्त 'महारस', महाभाव का ही द्योतक है; जिस स्थिति में प्रेमी की दशा में ही प्रेमास्पद भी आक्रान्त हो जाता है। दो मिलकर एक हो जाते हैं, जिसे प्रेमाद्वैत कहते हैं।

स्वयं आचार्यप्रभु अनंत श्री विभूषित प्रेमावतार श्रीमद् रामहर्षण दास जी महाराज के आध्यात्मिक जीवन में यह महाभाव दशा उनकी 'प्रेम समाधि' के समय थी। (विशेष देखें- श्रीप्रेमरामायण प्रणाम भाष्य, पृ0 10-16)

आचार्य प्रभु ने प्रेम समाधि की जो रूपरेखा प्रथम ही प्रस्तुत की, और उसका पालन किया जिसके फलस्वरूप पेड़ के पत्ते-पत्ते में उन्होंने इष्टदेव श्रीसीताराम जी का दर्शन किया। उन्होंने प्रेम समाधि का लक्षण, अधिकारी, अवधारणा और मनः स्थिति लिखित रूप में जो बतायी, वह इस प्रकार है।

लक्षण-

प्रेम को देखना, प्रेम को सुनना, प्रेम को स्पर्श करना, प्रेम को सूँघना तथा प्रेम का जीह से रस लेना।

अधिकारी-

राग-द्वेष से हीन प्रभुमय जगत को देखनेवाला, ममता और अहंकार से रहित प्रभु संबंध से संबंधित पुरुष ही भाव समाधि के योग्य होता है।

अवधारणा-

प्रायः भाव समाधि में भाव की अत्यन्त घनता होने पर प्रेमी, प्रेमास्पद तथा प्रेम एक हो जाते हैं।

मनः स्थिति-

संकल्पहीन मन दृष्ट और श्रुत पदार्थ से परम वैराग्यवान हो श्रीसीतारामजी में परम रागान्वित होकर ही भाव समाधि के योग्य होता है।

"प्रेम समाधि में बैठने के बाद स्वामीजी की स्थिति अत्यन्त करूणाजनक एवं संवेदनशील हो गयी। आप प्रतिदिन चिल्ला-चिल्लाकर करुण क्रन्दन करते थे, "हे मेरे प्यारे"। ऐसी आह भरी आवाज को श्रवण कर मन्दिर में रहनेवाले संतों ने स्थान छोड़ दिया। आपकी कुटी के पास जो चरवाहे, गाय भैंस चराने जाते थे, उन्होंने भी करुण पुकार सुनकर कुटी की सीमा में आना बंद कर दिया। अब श्रीसाकेत विहारी दास जी से भी आपकी आह भरी करुण पुकार न सुनी गयी और आप भी स्थान की सेवा अन्य साधु को सौंप कर रीवाँ चले गए। रीवाँ जाकर अपने गुरुभाई प्रकाश नारायण इत्यादि से स्वामी जी की हालत बतलाई। कहा कि स्वामीजी चीख-चीख कर रुदन कर रहें हैं। किसी दिन प्रसाद पाते हैं, किसी दिन थाल ज्यों का त्यों रखा रह जाता है। अतः सभी शिष्यों ने इस पर गंभीरता-पूर्वक विचार किया और अंत में इस निष्कर्ष पर पहुँचे कि प्रेम समाधि भंग की जाय।"

प्रेम समाधि में स्वामी जी ने कुछ दिन तक स्नान, पूजन और शौचादि नियम नहीं किये थे। शिष्यों ने जब पूछा, स्वामीजी! इसका क्या कारण था कि आप प्रसाद तक नहीं पाते थे तब स्वामी जी ने उत्तर दिया कि उस समय प्रत्येक स्थान के कण-कण में यहाँ तक कि फलाहार में भी श्रीसीताराम सीताराम लिखा दृष्टिगोचर हो रहा था। जिसके कारण फलाहार ग्रहण करना उचित नहीं था। "जंगल से जब किनारे के पेड़ों पर नजर डालें तो डाल-डाल, पात-पात पर सर्वत्र सजीव श्रीसीतारामजी की सलोनी मूर्त्ति का दर्शन हो। स्नान के जल में, प्रसाद के थाल में यहाँ तक कि लघुशंका में भी उन्हीं का दर्शन हो। बहुत ग्लानि होती थी। ऐसा लगता था कि कूएँ में कूद जाएँ।" (श्रीप्रेमरामायण प्रणाम भाष्य, पृ0 15-16)। श्रीप्रेमरामायण (2/95-96) में इसी का संकेत है-

मन चित्त बुद्धि सूछम अहं सबहीं गये बिलाय।
आत्मसार शुचि प्रेमरस, रहेब एक तहँ छाय।।
प्रेम विभोर सुधिहिं बिसराये । चिदाकाश रहि गये सुभाये।।
आत्मधाम सिय रघुबर जोरी । षोडश द्वादस बयस किशोरी।।

यह अर्द्धमात्रिक तुरीय स्वरूप है, जिसे आध्यात्मिक जीवन में 'महाभाव' नाम से पुकारा गया। श्रीचैतन्य महाप्रभु इसी महाभाव दशा में बहुत दिनों तक तल्लीन रहे। यह दशा स्वत्व के त्याग (स्वा) और सभी प्रकार के अस्तित्व के निषेध (न) के पश्चात् ही प्राप्त होती है। अतः स्पष्ट होता है कि 'स्वा' अथवा 'न' अर्द्धमात्रिक महाभाव का वाचक है।

पीछे कहा गया कि "सखण्ड 'स्वा' और 'न' अर्द्धमात्रा के विस्तृत रूप हैं और 'हा' तथा 'मः' नाद के।" 'स्वा' और 'न' का अर्द्धमात्रा के विवरण रूप में निरूपण किया गया। अब यथामति 'हा' तथा 'मः' का नाद के विस्तृत (विवरण) रूप में निरूपण प्रस्तुत है। आधार श्लोक (प्रे/1/मं0 7-8) में प्रयुक्त 'ब्रह्माण्डानन्त कारिणीम्' पद को नाद का वाच्य कहा गया है।

'स्वाहा' का 'हा' हानि-वाचक है। 'नमः' का 'मः' ममकार का वाचक है। हानि के दुःख का मूल कारण है स्वत्व का अभिमान। "ममकार (ममत्व) मृत्यु का दूसरा स्वरूप है। जैसे ही स्वत्व का नाश अथवा ममकार का त्याग होता है, वैसे ही आत्म-स्वरूप प्रकाशित होने लगता है। जिस प्रकार बादल हट जाता है तब सूर्य प्रकाशित होने लगता है। क्योंकि आत्म स्वरूप अहम्-मम से आच्छादित रहता है। आत्मस्वरूप के प्रकाश से आहलाद का एक निनाद होता है, जिसे नाद कहते हैं।

तत्पश्चात् एक आश्चर्यजनक स्वतः सृष्टि का विस्तार दृष्टिगोचर होता है, जो 'ब्रह्माण्डानन्तकारिणीम्' पद का वाचक है।

उदाहरणार्थ श्रीप्रेमरामायण, मिथिलाकाण्ड में श्रीसीताराम विवाह मण्डप में कन्यादान के अवसर पर दूलह श्रीरामजी महाराज के श्रीचरण पखारने के पश्चात् विदेहकुमार अपने जागतिक स्वत्व का संकल्प-पूर्वक अर्पण करते हैं (प्रे/1/401)। विवाह की विधि के अनुसार जैसे ही भाँवरी पूरी होती है कि आकाश वाणी होती है जिसके सुनते ही कुँअर आनन्दमग्न हो जाते हैं। आकाशवाणी होती है एक दिव्य शाश्वत विलक्षण ब्रह्मसृष्टि की-

राम गये सब तुम पर बारी। आत्मदान करि भये सुखारी।।
अमित कृपा के पात्र बनाये । राउर मुख लखि सो सुख पाये।।
प्रेम लक्षणा भक्तिहु दीनी । महाभाव रस सन्तत लीनी।।
सेव इकान्तिक भजन सुजाना । दीन्ह प्यार बहु विधि सनमाना।।
मज्जन अशन शयन संग रामा । दिनचर्या तव होई ललामा।।
सुनि कुमार अतिशय सुख मानी । प्रेम पगे आनँद अघानी।।
राम कृपा लक्ष्मीनिधि पाई । सुनत समाज सरस सुख छाई।।
बरषि सुमन जय कहत सुजाना । देव बजावहिं मुदित निशाना।।
(प्रे/1/407)

इसी प्रकार श्रीआचार्य प्रभु के व्यावहारिक जीवन में पूर्व वर्णित प्रेम समाधि के पश्चात् मार्कण्डेय आश्रम में प्रेमयज्ञ होता है और श्रीस्वामीजी बैठ जाते हैं 1964 ई0 (संवत् 2021) में श्रीप्रेमरामायण महाकाव्य की संरचना में भाद्रशुक्ल अष्टमी (राधाष्टमी) को। ठीक एक वर्ष बाद 1965 ई0 (संवत् 2022) में उसी तिथि को 1665 दोहा-चौपाई का विशाल महाकाव्य पूर्ण हो जाता है। इस ग्रंथ की कोई प्रतिलिपि भी नित्य एक घंटे बैठकर (जितना प्रभु बैठते थे) नहीं कर सकता है। तत्पश्चात् ग्रंथ रचना की एक नई सृष्टि का दर्शन होने लगता है:-1970 ई0 में 451 पदों की विनय वल्लरी, 1971 ई0 में 784 दोहे की श्रीहर्षण सतसई, 1974 ई0 में 1580 पदों का विशाल प्रबन्धात्मक गेयकाव्य 'लीला सुधा सिन्धु' इत्यादि। आज 43 वर्षों में छोटे-बड़े पैंतीस ग्रंथों का एक नया संसार बन गया।

मंदिरों के निर्माण की अलग कहानी है। 1980 ई0 में श्रीरामहर्षण कुंज अयोध्या में श्रीसिद्धि सदन विहारिणी विहारीजू की प्रतिष्ठा के पश्चात् आज हमारे सामने आचार्य प्रभु के अधीनस्थ निम्नलिखित मंदिर हैं:-

(1) पौड़ी में श्रीआचार्य पीठ (2) खजुहा में मिथिला विहारिणी-विहारीजू (3) रीवाँ में कोहवर-विहारिणी-विहारीजू (4) सीधी (5) शाहनगर(6) विजयराघवगढ़ (7) साजा, रायपुर (8) श्रीचौरसियाजी का मन्दिर, प्रतापगढ़ (9) रागी (गोन्डा) मन्दिर (10) श्रीराम मंत्रार्थ मण्डपम्, श्रीअयोध्याजी।

इस प्रकार, स्पष्ट होता है कि श्रीसीतामंत्र का सखण्ड 'स्वाहा' या 'नमः'के 'हा' और 'मः', बीज का नाद वाचक है, जिसका अर्थ'ब्रह्माण्डानन्तकारिणीम्' पद द्वारा मूल श्लोक (प्रे/1/7-8) में संकेत किया गया।

एवं प्रकारेण श्रीहर्षण साहित्य के आधार पर श्रीसीतामंत्र का अर्थ-निरूपण यथामति किया गया। 'यह ऐसा ही है (इदमित्थम्) का दावा हम स्वप्न में भी नहीं कर सकते। आप बीती हम केवल यही निवेदन कर सकते हैं कि यह रचना लिखने का कोई विचार नहीं रहते हुए भी बल्कि विचार को तीन वर्षों तक लगातार दबाते रहने पर भी जबर्दस्ती हमसे लिखवायी गयी। दिनरात, उठते-बैठते मन को मथनेवाले आचार्य प्रभु ने जो लिखवाया उसके ज्ञाता, कर्त्ता और भोक्ता दास कदापि नहीं है, स्वयं आचार्यश्री ही हैं अतः यह उन्हीं के श्रीचरणों में अर्पित है।

त्वदीयं वस्तु हे राम! तुभ्यमेव समर्पितम्।।
अद्य मे सफलं सर्वं त्वन्नाम स्मरणं तथा।
त्वत्पादाम्भोरुह द्वन्द्वे सद्भक्तिं देहि राघव।।

***

10/07/2011

श्री कनक भवन बिहारी जी, अयोध्या जी

मुबारक

सिया रानी का अचल सुहाग रहे, राजा राम के सिर पर ताज रहे।
जब तक पृथिवी अहि शीश रहे, गंगा यमुना की धार बहे।।
नभ में शशि सूर्य प्रकाश रहे, तब तक यह बानक बना रहे।
नित बना रहे, नित बनी रहे, नित बना-बनी में बनी रहे।।
सुहाग रहे, शिरताज रहे, नित नित यह बानक बना रहे।
नित कनक विहारी विराज रहे, नित अलियों का यह समाज रहे।।
नित झाँकी ऐसी साज रहे, प्रेमी जन का बड़भाग रहे।।

श्रीकृष्ण दास (उपाध्याय जी)

(युगल प्रिया शरण)

परिशिष्ट

अनन्त श्री विभूषितश्री स्वामी रामहर्षणदास जी महाराज का अमूल्य भक्ति साहित्य

1 वेदान्त दर्शन (ब्रह्मसूत्र व्याख्या)
2 श्री प्रेम रामायण (चतुर्थ संस्करण)
3 औपनिषद ब्रह्मबोध
4 गीता ज्ञान
5 रस चन्द्रिका
6 प्रपत्ति-प्रभा स्तोत्र
7 विशुद्ध ब्रह्मवोध
8 ध्यान वल्लरी
9 सिद्धि स्वरूप वैभव (द्वितीय संस्करण)
10 सिद्धि सदन की अष्टयामीय सेवा
11 लीला सुधा सिन्धु (तृतीय संस्करण)
12 चिदाकाश की चिन्मयी लीला
13 वैष्णवीय विज्ञान
14 विरह वल्लरी
15 प्रेम वल्लरी
16 विनय वल्लरी
17 पंच शतक
18 वैदेही दर्शन
19 मिथिला माधुरी
20 हर्षण सतसई
21 उपदेशामृत
22 आत्म विश्लेषण
23 राम राज्य
24 सीताराम विवाहाष्टक
25 प्रपत्ति दर्शन
26 सीता जन्म प्रकाश
27 लीला विलास
28 प्रेम प्रभा
29 श्री लक्ष्मीनिधि निकुंज की अष्टयामीय सेवा
30 आत्म रामायण
31 मातृ स्मृति
32 रस विज्ञान

श्रीहर्षण साहित्य के अनमोल बोल
परिशिष्ट- II झांकी के पद

दुलहा बड़ो दिलदार मोरी सजनी।
प्रीति रीति पहिचानत सबकी, हिय को हर्षण हार। मोरी.।
नयनन नयन मिलाय दूरि ते, कियो कृपा सुख सार।
करत कलेउ निरखि मम ओरी, मुसक्यो मधु रस ढार।
कोहवर कक्ष करत जब हाँसी, पकर्‍यो हाथ हमार।
परस पाय परतम सुख पायो, मान्यो मोद अपार।
रसमय रसिक राय रघुनन्दन, रसिकन रस दातार। मोरी।
हर्षण होय सबहिं विधि तिनके, रहहु रसी सब नार।
(लीला सुधा सिन्धु/पृ0 252/पद 512

अलि चित चोरवा के अँग अँग चोर।
काह अलक का कानन कुन्डल, का सेहरा का सिर मणि मौर।
का भल भृकुटी का दृग कजरे, काह केशरिया माथे खौर।
काह नासिका काह कपोला, काह अधर मुसकानि रस घोर।
काह चिबुक का कण्ठ-हृदय कटि, का कर-करज कंध कलकोर।
काह उरू-जंघा-पद प्रिय तम, का नख अंगुलि पदतल ठौर।
का चितवनि मधुरी वर बोलनि, काह चलनि का मिलनि विभोर।
हर्षण मन को मोहन मधुमय, सुख सुषुमा श्रृँगार में बोर।
(लीला सुधा सिन्धु/पृ0 255/पद 518

देखो दुलहा दुलही अयोना।
मरकत कनक वरण वर जोरी, श्याम गौर घन दामिनि लोना।
मिथिला महल बिराजहिं अनुपम, आँनद आँनद आँनद बोना।
सेहरा सिरहिं मौर अरु मौरी, व्याह विभूषण मणि मय सोना।
कोटि काम रति लाजहिं तन पै, शारद शशि शत बदन सलोना।
मन डेरात सखि देखि सुशोभा, लगै न डीठ मूठ अरु टोना।
धूम मची पुर खोरहिं खोरी, सीता राम सुभग रस भौना।
हर्षण नयन बसे दोउ प्यारे, झूलत रहैं युगल नृप छौना।
(लीला सुधा सिन्धु/पृ0 256/पद 521)

आली अखियन में अखियाँ लग गई रे।
श्याम सुँदर मन मोहन दुलहा, चतुर चितय चित चोर लई रे।
श्यामहि श्याम दिखात सबहिं कछु, श्रावण अंधहि हर हर मई रे।
रैन दिवस गृह काज न भावत, राग रंग बुधि खोय दई रे।
पलक ओट नयना नहिं चाहत, निमिष विरह दुख दुसह जई रे।
तेहि ते राज भवन द्रुत गवनहुँ, लोक लाज कुल कान खई रे।
सास श्वसुर अरु नँनद कहें जो, सहिहौं बनरा हित हिय चई रे।
हर्षण हिय को हरण पियरवा, बड़े भाग पुर बीच पई रे।
(लीला सुधा सिन्धु/पृ0 261/पद 533)

सखि दुलहे को दिल में बसाय राखो।
जो कछु मिले एकान्त मधुर मोहिं, हियरा सों हियरा मिलाय राखौं।
लागि गले छन छोड़ू न वाको, सर्वस दै अपना बनाय राखौं।
अरस परस आलिंगन चुम्बन, अधरन में मन को मोहाय राखौं।
चितवनि चारु चोरावन चित की, अँखियन में आँखियाँ लड़ाय राखौं।
करि करि बात भरि रस मधुरी, मन बुधि अपनों रँगाय राखौं।
जैसो कहै करौं सोई सजनी, कुल मर्याद गमाय राखौं।
हर्षण कहौं हृदय की बतिया, लोक प्रलोक बहाय राखौं।
(लीला सुधा सिन्धु/पृ0 262/पद 535)

परिशिष्ट- III अवध में युगल झाँकी
(प्रिया प्रियतम का मनुहार)

राजत कनक महल पिय प्यारी।
रत्न सिंहासन सखियन सेवित, झाँकी अति उजियारी।।
कोटि काम रति मद हर मूरति, सुख सुषमा श्रृंगारी।
कोउ अलि छत्र चमर लिय कोऊ, कोउ बींजन सुख कारी।।
इतर दान कोउ पान दान लिय, कोउ छड़ी छबि बारी।।
कोउ नृत्यहिं कोउ गावहिं सुख सनि, भाव भंगिमा न्यारी।
कोउ लै तान बजावहिं वाद्यहिं, कोउ अलाप सुख सारी।
हर्षण पियहिं पियावहिं रस कहँ, सखि सिय-पिय-हिय हारी।।
(लीला सुधा सिन्धु/पृ0 501/पद 1072)

पिया जू के अरुण वरण वर तरवा।
जिनके छुद्र अंश ते शोभित, कमल कली मधु भरवा।।
अंकुश-कुलिश-कमल-कल्पद्रुम, उर्ध्व रेख ध्वज धरवा।
मुनि मन मानस हंस निरन्तर, विधि हरि हर हिय सर्वा।।
जनक लली करतल ते लालित, भक्त उरहि के हरवा।
सुन्दर सुख के खानि सरस अति, छबि श्रृँगार के धरवा।।
मंगल मय मधुरे मन मोहक, वशीकरण दुख दरवा।
हर्षण लगन लगैबे लायक, सदा रसहि रस झरवा।।
(लीला सुधा सिन्धु/पृ0 501/पद 1074)

सखि लखु सिय पद की अरुणाई।
क्या गुलाब क्या कमल किंसुका, क्या महावरी ललाई।।
मधुर मधुर सुन्दर सुकुमारे, सहज सुगन्ध समाई।
अति लावण्य कलित कोमलता, लोनी लस ललिताई।।
अंकुश-कुलिस-कमल-ध्वज अंकित, ऊर्ध्व रेख छबि छाई।
हरण ताप त्रय मुनिन सुसेवित, योगि रमत जहँ जाई।।
सुख के सिन्धु पियहु लखि ललचत, अतिशय आनँद पाई।
हर्षण-चित्त मधुप मेड़रावै, पद तल पंकज धाई।।
(लीला सुधा सिन्धु/पृ0 503/पद 1077)

पिय मुख का मधु घोल रे, पीवो प्रेम पगे रे।
प्रिय पदार्थ त्रिभुवन के जेते, अमृत हूँ नहिं तोल रे।।
सदा प्रसन्न प्रेम ते पूरित, जहँ निकसत मृदु बोल रे।
दृग ते देखि चित्त ते चिन्तन, ध्यान धरहु बिन डोर रे।।
मुनि मन हरण शम्भु को सर्वस, सिय को प्राण अमोल रे।
परिकर जन के जीवन धन गुन, बिनु देखे जिउ लोल रे।।
आनँद कन्द परम सुख भौमा, शाश्वत इक रस घोल रे।
हर्षण हेरि हेरि हर्षावहु, अन्तर के पट खोल रे।।
(लीला सुधा सिन्धु/पृ0 506/पद 1086)

परम प्रिय प्यारी मुखहिं निहार।
अति सुख पाय पलक नहिं लावत, प्यारो प्राण अधार।।
झरि झरि अमिय चुअत जेहि तेरे, जो नहिं चन्द्र मझार।

दृग दोनन भरि भरि पिय पीवत, नहिं अघात सुखं सार।।
आनँद वर्धक हिय अहलादक, प्रिय कर अकथ अपार।
परिकर वृन्द नित्य परिपालक, जीवन धन छबि वार।।
सुमिरत जाहि जगत जड़ जीवहु, होहिं बेगि भव पार।
हर्षण हुलसि हुलसि सिय सखियाँ, कहत सुनत हिय हार।।
(लीला सुधा सिन्धु/पृ0 506/पद 1087

पिया की भुज पै हौं बलि जाति।
बड़ी बड़ी जो जानु लौं जावति, विविध विभूषण भाति।।
अभय दानि बलवानि समर्था, परिकर परशि सुहाति।
जेहि धनु भंजि प्रिया को पाणी, ग्रहण करी सुख दाति।।
हर्षण वृषभ कंध ते निकसी, नयनन प्रिय छबि छाति।
(लीला सुधा सिन्धु/पृ0 520/पद 1122

प्यारी जू की भुजनि अली।
बार बार बलि बलि जइये, जेहि ते सबहिं पली।।
अशय करनि सुख शान्ति प्रदायिनि, अनुप अनन्द थली।
वसन विभूषण भूषित सुन्दर, शोभा सींव भली।।
हर्षण परसि जाहि सुख सानत, राज किशोर बली।
(लीला सुधा सिन्धु/पृ0 520/पद 1123

जय जय प्रीतम जयति पियारी।
जय जय दशरथ नन्दन हमरे, जय जय जनक दुलारी।।
जय मन मोहन सुख के सिन्धू, जय जय कलि मल हारी।
मधुर मधुर जय जय मृदु मूरति, सुख सुषुमा श्रृँगारी।।
कोटि काम मद मर्दन जय जय, मिथिला अवध बिहारी।
जय जय परिकर-प्रेम प्रहर्षित, श्यामा श्याम सुखारी।।
नयन विषय चित चोर जयति जय, रसिक राय रस वारी।
शक्ति सहित विधि हरि हर वन्दित, जय हर्षण प्रभु पारी।।
(लीला सुधा सिन्धु/पृ0 524/पद 1134

परिशिष्ट- IV श्याल-भाम का मनुहार

श्री रामजीः-

सखे! मैं तो तव मुख चन्द्र चकोर।
सुधा सुपूरित आनन निरखत, तृप्ति न सुनो किशोर।।
चतुरानन की पूर्ण चतुरता, सृजन कला सिर मौर।
विस्मयदायक तव मुख लखि के, गई खोय भव भीर।।
मदन विमर्दनि आभा आनन, रस ही रस में बोर।
रसासिक्त मन रसिक की संज्ञा, पाई कृपा की कोर।।
काह कहें इन दृग मधुपों को, मुख मकरन्द न छोर।
हर्षण भाम श्याल का लोभी, लिया चित्त को चोर।।

(प्रेम प्रभा/पृ0 5/पद 1)

श्री लक्ष्मीनिधिजी :-

तव मुख कमल पराग को पी पीकर के,
मम मन मधुकर मेड़राताहै।
छोड़ नहीं सकता है क्षणभर को भी,
गुन गुन करके सुख पाता है।
क्योंकि मधु में है स्वाद अनोखा,
जो जान न सके विधाता है।
यदि श्रीराम हमारे सो सुख को चाहें।
ते बने श्याल सुखदाता है।
बनें बिना सिय भ्रात न पायेंगे रघुवर,
कैसा यह सुखप्रद नाता है।
अनुभव कमल नहीं कर सकता है,
मधु को मधुप यथा पाता है।
श्रीराम कृपा ते तव रस को स्वादत,
एक श्याल आपका भाता है।
हर्षण यही प्रार्थना प्रार्थ्य से करता,
हो न अन्य ज्ञान रसदाता है।

(प्रेम प्रभा/पृ0 6/पद 2)

परिशिष्ट- V चिदाकाश-की-चिन्मयी लीला

" प्रेम का सही उपयोग क्या है ?"

" प्रेम का उपयोग प्रेम के लिए, परमात्म-प्रसाद एवं उनकी प्राप्ति के लिए है।"

" परमात्मा क्या अन्य साधनों से नहीं प्राप्त होता ?"

" प्रेमातिरिक्त साधनों के द्वारा परमात्मा की उपलब्धि असम्भव है।"

" अन्य साधनों की महिमा का वर्णन शास्त्रों में क्यों किया गया है ?"

" साधन, साधनाभिमान छुड़ाने एवं प्रेम के योग्य भूमिका बनाने के लिये है।"

" प्रेमी और प्रेमास्पद का स्वरूप कैसा होता है ?"

" जैसे हम दोनों श्याल-भाम का स्वरूप।"

" प्रेम से प्रेमास्पद का दर्शन सुलभ हो जाने पर प्रेम क्या समाप्त हो जाता है, जैसे पेट भर जाने से भूख समाप्त हो जाती है ?"

" प्रेम में यही वैलक्षण्य है, वह प्रेमास्पद के मिलने पर भी उत्तरोत्तर बढ़ता जाता है, जैसे लोभी को धन, विषयी को विषय प्राप्त हो जाने पर लोभ और विषय की परिवृद्धि होती जाती है।"

(चिदाकाश-की-चिन्मयी लीला/पृ0 109)

एक दिन रात्रि के समय स्वयं के कक्ष में सिद्धि सोई थी, एकान्त पाकर विरह-वेदना ने उसे धर दबाया, प्राण घुटने लगे मूर्च्छावस्था ने वरण कर लिया, उस अवस्था में उसे एक दृश्य का दर्शन हुआ, वह यह है कि, सूर्य संकाश सिंहासन सुखेन संस्थिता सेवाभरण भूषिता महालक्ष्मी, अनेका-नेक शक्तियों से समावृत हैं, उनकी अङ्गकान्ति कनकोज्वल कमनीय अप्रतिम और अनिर्वच है। उन्होंने पाणिबद्धा सिद्धि सेविका से कहा कि तुम सुफल मनोरथा हो, जिसकी प्राप्ति के लिए तुम्हारी की हुई आराधना ने आराध्या को प्रसन्न करके प्रत्यक्ष दर्शन देने के लिए बाध्य कर दिया है, परब्रह्म पुरुषोत्तम भगवान राम की वह सहज स्वरूपा कल्याण गुण गणार्णवा सर्व शक्ति सम्पन्ना सीता मेरा ही आदि स्वरूप है, ऐसा कहने के पश्चात् महालक्ष्मी का दर्शन अपनी सर्वस्वा सीता के साक्षात् स्वरूप में होने लगा, प्राणिपात करने पर हृदय से लेकर देवि ने कहा कि,- "तुम मेरी सदा की भाभी हो।"

(चिदाकाश-की-चिन्मयी लीला/पृ0 138)

परिशिष्ट- VI आलोचना के कुछ अंश

(क) गोस्वामी तुलसीदास जी के समकालीन स्वामी नाभादास जी की उक्ति- 'कलि कुटिल जीव निस्तार हित वाल्मीकि तुलसी भयो'- यदि सही निकली तो यह टिप्पणी भी अगली इक्कीसवीं शताब्दी के पूर्वार्द्ध तक सही हो जायेगी कि-

प्रेमरामायण रचकर, प्रस्थान त्रयी का भाष।
प्रेमरस आस्वाद हित, तुलसी हर्षण दास।।

-बीसवीं शताब्दी के जीवित तुलसीः श्रीमद् स्वामी रामहर्षण दास, पृ0 1.

(ख) ''अहर्निश अष्टयाम भावना में तल्लीन रसिक शिरोमणि प्रेमरामायणकार के भावसिन्धु में स्थित मैथिल सख्य रति रूपी सीपी में पुरुषकारिणी आदिशक्ति जगज्जननी जानकी की कृपा-वर्षा होने के फलस्वरूप जिस काव्य-मणि का अवतरण होता है, वह 'प्रेम समाधि' की वैखरी वाणी है। इस मुक्तामणि को सख्य भावानुकूल युक्तियों से बेधा गया है और रामचरित के लोक-प्रसिद्ध धागे में गूंथा गया है। यह मणिमाला एक साथ तीन छबि-रूपों को अपने में बाँधे है- दो गौर के बीच एक श्याम छवि। दो गौर हैं जगज्जननी जानकी और उनके अग्रज श्रीलक्ष्मीनिधिजी महाराज और एक श्याम छवि हैं मर्यादा पुरुषोत्तम श्रीरघुनाथ।''

-समकालीन रामकथा : श्री प्रेमरामायण, पृ0 10

(ग) मैथिल सख्य रसानुसार जीव और ईश्वर में श्याल-भाम संबंध रहता है-

जीव श्याल रघुवर हैं भामा । स्वाभाविक संबंध ललामा।।

दार्शनिक स्तर पर श्याल-भाम संबंध का निरूपण करते हुए आचार्यपाद कहते हैं कि उपासना में तीन तत्व हैं- ईश, जीव और शक्ति। ईश तत्व श्रीरघुनाथ जी हैं, जो जीव और शक्ति दोनों के भोक्ता हैं। जीव और शक्ति दोनों श्रीरघुनाथ जी के भोग्य-भोग्या हैं। भोग्य और भोग्या में केवल लिंग-भेद है। हैं दोनों सवर्ण अतः आपस में दोनों भाई-बहन हैं। श्रीरघुनाथ जी शक्ति के पति होने के कारण जीव के बहनोई (भाम) हैं और जीव उनका साला (श्याल)।

-''मैथिल सख्य रस के प्रतिष्ठापक महाकवि स्वामी राम हर्षणदास'', पृ0 39-40।

Pawan/09-05-2017
https://www.facebook.com/PawanAwadhvasi

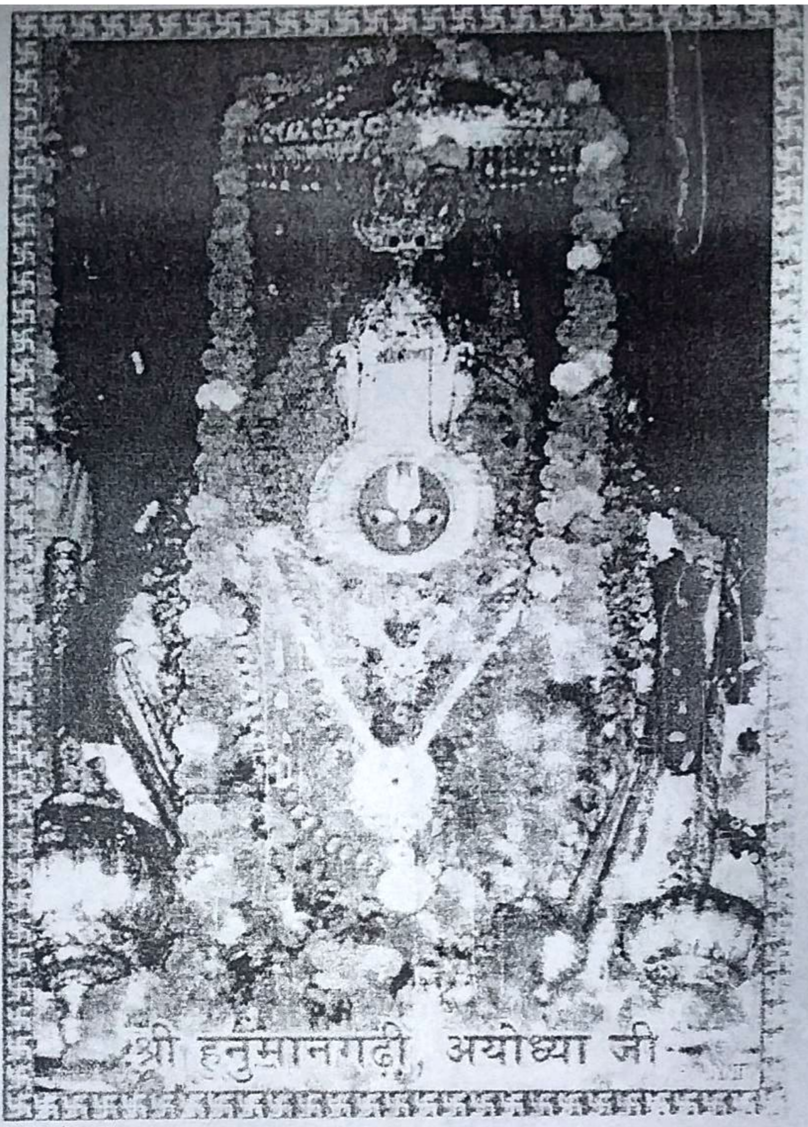

कृपा-विलोकनि

जाके गति हैं श्री हनुमान की।
ताकी पैंज पूजि आई, यह रेखा कुलिस पषान की।।
अघटित-घटन, सुघट-विघटन, ऐसी विरुदावली नहिं आन की।
सुमिरत संकट-सोच-विमोचन, मूरति मोद-निधान की।।
तापर सानुकूल, गिरिजा हर, लषन राम अरु जानकी।
तुलसी कपि की कृपा-विलोकनि, खानि सकल कल्यान की।।

श्रीकृष्ण दास (उपाध्याय जी)
(युगल प्रिया शरण)

श्रीकृष्ण दास (उपाध्यायजी)
(युगल प्रिया शरण)

मंगलानुशासन

गौराँग रसमयम् नित्यम्, रसाचार्यम् रसोत्सुकम्।
श्रीरामहर्षण देवाख्यम्, सद्गुरुम् प्रणमाम्यऽहम्।।
सदा प्रपश्य मंगलम्, श्रीसद्गुरोर्मुखाम्बुजम्।
सदा प्रपश्य मंगलम्, श्रीसद्गुरोर्पदाम्बुजम्।।